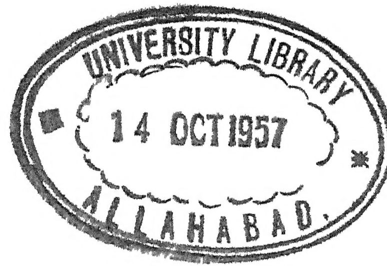
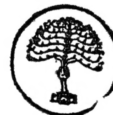
रेवा

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार





राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

मूल्य एक: दो, तीन रुपये
द्वितीय संस्करण : मई १९५७
प्रकाशक : राजपाल एण्ड संज़, दिल्ली
मुद्रक : युगान्तर प्रेस, डफ़रिन पुल, दिल्ली

भूमिका

१

'रेवा' ऐतिहासिक नाटक नहीं। फिर भी उसका आधार ऐतिहासिक अवश्य है।

इतिहास इन तीन बातों को सच मानता है—

(१) काम्बोज के राजकुमार यशोवर्मा एक महत्वाकांक्षी युवक थे। युवावस्था में उन्होंने चम्पा पर आक्रमण किया, परन्तु वह पराजित हो गए। इस पराजय के बाद उन्हें अपने राज्य से भी हाथ धोना पड़ा। बरसों तक वह दर-दर ठोकरें खाते रहे और अनेक द्वीपों की ख़ाक छानते फिरे। कुछ समय के बाद उन्होंने सैन्य संग्रह किया, और तब उन्होंने काम्बोज पर अपना शासन स्थापित कर लिया। उसके बाद उन्होंने चम्पा को जीता और आसपास बहुत-से प्रदेशों को जीतकर एक बड़ा भारी साम्राज्य बना लिया। यशोवर्मा हिन्दू सभ्यता के रक्षक थे और वह एक महान् कला-प्रेमी थे। अंगकोर थोम का जगत्-प्रसिद्ध शिवमन्दिर (अंगकोर वाट) उन्हीं के शासन-काल में बनाया गया था।

(२) काम्बोज से बहुत दूर, समुद्र में एक भग्न-सी पहाड़ी है। पुरातत्त्वज्ञों का कहना है कि कभी इस पहाड़ी के निकट एक छोटा-सा सम्पन्न द्वीप रहा होगा, जो अब जलमग्न हो चुका है।

(३) चोलवंश के परान्तिक नामक एक राजा ने चोल साम्राज्य का खूब विस्तार किया। यह परान्तिक यथेष्ट लोकप्रिय भी था।

इस नाटक के ऐतिहासिक आधार इतने ही हैं। शेष सब कल्पना है। यह नाटक रंगमंच के लिए नहीं लिखा गया। रजतपट इस नाटक का एक अत्यन्त श्रेष्ठ माध्यम बन सकता है।

मुझे विश्वास है कि मेरे पाठक 'रेवा' को पसन्द करेंगे।

आशानिकेतन
लाहौर
३० अगस्त, १९३८

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

२

कुछ आवश्यक परिवर्तनों के साथ 'रेवा' का यह नया संस्करण प्रकाशित हो रहा है। पिछले २० बरसों में संसार की परिस्थितियाँ बड़ी तेजी से बदली हैं। इन्हीं बरसों में एटम-युग का प्रारम्भ हुआ है। पर यह अनुभव कर मुझे विशेष सन्तोष प्राप्त हुआ कि इन परिवर्तित परिस्थितियों में 'रेवा' नाटक अब पहले की अपेक्षा भी बहुत अधिक समयोपयोगी और अर्थपूर्ण बन गया है। इस एटम-युग में स्वतन्त्र भारत विश्व भर को शान्ति-मार्ग का संदेश दे रहा है। 'रेवा' नाटक में चोल-राजकुमारी इन्दिरा के प्रयत्न और ऋषि पुण्डरीक के शान्ति-संदेश भारत के इसी प्राचीन उद्देश्य की ओर संकेत करते हैं।

'रेवा' भारतीय संस्कृति के विदेशों में विस्तार की कहानी है। पर यह विस्तार शस्त्र-बल के आधार पर नहीं, अपितु भारतीय संस्कृति की आन्तरिक प्रचुरता और श्रेष्ठता के आधार पर होता है। काम्बोज और चम्पा के पारस्परिक युद्धों का वर्णन रहते भी जहाँ तक उस बड़े भूभाग में भारतीय संस्कृति के प्रसार का सम्बन्ध है, वह सबका सब पूर्णतः शान्ति और मित्रता के आधार पर हुआ। यह एक ऐतिहासिक सत्य है।

पटौदी हाउस
नई दिल्ली
१३ अप्रैल, १९५७

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

नाटक के पात्र

पुरुष—

यशोवर्मा : काम्बोज के युवराज, बाद में सम्राट

कृष्णवर्मा : यशोवर्मा के चचेरे भाई

श्रीदेव : यशोवर्मा के सेनापति

जनार्दन : यशोवर्मा के मित्र, बाद में प्रधानमन्त्री

पुण्डरीक : यशोवर्मा के राजगुरु

गुरुदेव : आशाद्वीप के शिव मन्दिर के प्राचीन वृद्ध पुजारी

सन्दीप : गुरुदेव का शिष्य

परान्तिक : भारतवर्ष के विजयी चोल युवराज

मकरन्द : एक समृद्ध भारतीय व्यापारी

गोविन्द : एक भारतीय कलाकार, निर्माता

अन्य : चोलराज, चम्पानरेश, विद्यार्थी, सैनिक, नागरिक, द्वारपाल आदि

स्त्री—

रेवा : आशाद्वीप की राजकुमारी

इन्दिरा : परान्तिक की बहन, चोलराज की कन्या। बाद में काम्बोज की सम्राज्ञी

देश—	*नगर—*
१. भारतवर्ष	सुपत्तन : भारतवर्ष का बन्दरगाह
२. काम्बोज	मदुरा : भारत का एक नगर
३. चम्पा	अंगकोरथोम : काम्बोज की राजधानी (बाद में यशोधरपुर)
४. आशा द्वीप	अमरावती : चम्पा की राजधानी
५. कुमारी द्वीप	

प्रथम अङ्क

दृश्य १

देश—*आशाद्वीप*
स्थान—*राजमहलों के निकट एक सामुद्रिक पहाड़ी पर स्थित शिवमन्दिर*
समय—*सांझ*

[समुद्र में तूफ़ान आया हुआ है। हवा तेज़ी से चल रही है। शिव-मन्दिर एक छोटी-सी सामुद्रिक पहाड़ी की चोटी पर स्थित है। समुद्र की बड़ी-बड़ी लहरें इस पहाड़ी की नग्न चट्टानों पर जोर-ज़ोर से टकरा रही हैं और उनसे भयंकर कोलाहल उत्पन्न हो रहा है। राजमहलों से लगभग चौथाई मील का जो पक्का पुल इस मन्दिर की ओर आता है, उसका अधिकांश भाग इस समय जलमग्न है। मन्दिर के ऊंचे आंगन

के नीचे, पहाड़ी के बीचों-बीच श्वेत संगमरमर का एक चबूतरा है। समुद्र की फेनिल लहरें इस चबूतरे की दीवारों पर जैसे आक्रमण करना चाहती है। पश्चिम दिशा से घने-घने काले बादल आस्मान में बढते चले आ रहे हैं। रह-रहकर उनमें बिजली की द्युतिमान रेखाएँ एक छोर से दूसरे छोर तक दौड़ जाती हैं। चारों ओर निर्जनता है। चबूतरे पर रखे एक शिलाखड पर मन्दिर के बूढ़े पुजारी बैठे है, जिन्हें सम्पूर्ण आशाद्वीप में 'गुरुदेव' कहा जाता है। उनके सफेद बाल और गेरुवा वस्त्र अस्तव्यस्त-से होकर उड़ रहे है। यह अत्यन्त वृद्ध पुजारी, किस देश के हैं, इस सम्बन्ध में आशाद्वीप भर में किसी को कुछ भी ज्ञात नही। उनके सम्मुख दोनों घुटनों के सहारे अपनी ठोड़ी टिकाए राजकुमारी रेवा बैठी है। उसके शरीर पर उजले रेशम का एक लम्बा वस्त्र है। राजकुमारी ने अपने अत्यन्त काले और खूब लम्बे बालों के पिछले भाग को नागो की-सी बहुत-सी लटाओं में पृथक्-पृथक् बांध रखा है। ये लटाएँ हवा में उड़-उड़कर ऐसी प्रतीत होती है, जैसे रेवा ने अपने सिर पर बहुत-से सांप लटका रक्खे हों। उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में जैसे असीम आतक-सा भरा हुआ प्रतीत होता है। दो-एक क्षणों की चुप्पी के बाद रेवा सहसा पूछ उठती है।]

रेवा : तुम मुझे यहां क्यों ले आए बाबा ?

गुरुदेव : तुम्हें क्या डर मालूम होता है रेवा ?

रेवा : डर ? हां, मुझे सचमुच डर मालूम हो रहा है। समुद्र का इतना भयंकर तूफ़ान इतने निकट से मैंने आज तक कभी नहीं देखा था। मालूम होता है, जैसे कोई लहर आएगी और क्षण भर में मुझे अपने साथ बहा ले जाएगी।

गुरुदेव : तुम मौत से डरती हो क्या राजकुमारी ?

रेवा : क्यों नहीं । मौत से कौन नहीं डरता !

गुरुदेव : कम से कम मैं तो नहीं डरता । रेवा, आज मेरी मौत का दिन है । अभी । कुछ ही क्षणों के बाद ।

रेवा : (ज़रा सहमकर) मैं यह सब कुछ नहीं जानती । कहो, तुम मुझे यहां क्यों ले आए देगुरुव ? तुमने कहा था कि तुम मुझे आज एक ऐसी बात बताओगे, जा मेरे जीवन भर, मेरा पथ-प्रदर्शन करती रहेगी । तुम्हारा कहना मानकर मैं किसीको भी सूचना तक दिए बिना तुम्हारे साथ चली आई । परन्तु अब तुम वह बात बतलाते क्यों नहीं बाबा ? कहो, वह कौन-सी बात थी ?

गुरुदेव : वह बात कहने का अभी समय नहीं आया । तूफ़ान को ज़रा और बढ़ लेने दो । समुद्र की लहरें अभी इस चबूतरे पर नहीं पहुँचने पाईं । अभी थोड़ी-सी प्रतीक्षा और करनी होगी । लहरों का वेग बढ़ रहा है, अभी तुम्हारे देखते-देखते यह चबूतरा भी जलमग्न हो जाएगा । तब, स्वयं लहरों के साथ बह जाने से पहले मैं तुम्हें वह सन्देश देता जाऊँगा ।

[राजकुमारी और भी अधिक डर जाती है । परन्तु वह कुछ बोलती नहीं ।]

गुरुदेव :(हल्की-सी मुस्कराहट के साथ) घबराओ नहीं राजकुमारी । तुम अपने लिए चिन्ता मत करो । इस चबूतरे के जल-

मग्न होने से कुछ ही क्षण पहले सन्दीप आएगा और तुम्हें ऊपर, मन्दिर में, ले जाएगा और यह तो तुम जानती ही हो कि सम्पूर्ण आशाद्वीप के जलमग्न हो जाने पर भी यह मन्दिर जलमग्न नहीं हो सकता।

रेवा : राजमहल के लोग मेरी चिन्ता में होंगे। वह देखो, दूर पर, समुद्र के किनारे महलों के सभी निवासी एकत्र होते जा रहे हैं।

गुरुदेव : मुझे सभी कुछ मालूम है। मैं जानता हूँ कि वे लोग तुम्हारी ही खोज में हैं। परन्तु तुम किसी प्रकार का भय अनुभव न करो राजकुमारी!

रेवा : (संयत भाव से) बहुत अच्छा गुरुदेव!

गुरुदेव : रेवा, तुम से एक बात पूछूँ?

रेवा : पूछिए!

गुरुदेव : इस छोटे-से आशाद्वीप से बाहर का भी तुम्हें कुछ ज्ञान है राजकुमारी?

रेवा : है क्यों नहीं।

गुरुदेव : अच्छा बताओ, आशाद्वीप से बाहर के किन-किन द्वीपों अथवा प्रदेशों के नाम तुम जानती हो?

रेवा : हम आशाद्वीप के निवासियों की दृष्टि में बाहर का संसार हेय और महत्वशून्य-सा है। फिर भी बाहर के अन्य प्रदेशों और द्वीपों के नाम तो मैं जानती ही हूँ: काम्बोज, जावा, सुमात्रा, चम्पा, बोर्नियो, बाली।

और भी कितने ही द्वीप हैं। हमारे इस आशाद्वीप से बहुत दूर एक बड़ा भारी द्वीप है, जिसमें मनुष्य नहीं बसते। एक और जाति बसती है, जिसे शायद राक्षस कहते हैं। इस द्वीप का नाम है श्रीलङ्का। और बाबा, अब तो सुनने में आया है कि उससे परे भी संसार है। मालूम नहीं यह सच है या झूठ, परन्तु इतना मुझे अवश्य मालूम है कि हमारे इस अत्यन्त छोटे आशाद्वीप के समान सम्पन्न, सुसंस्कृत, सभ्य और सुखी द्वीप इस धरती पर दूसरा नहीं है। इसकी तुलना स्वर्ग ही से की जा सकती है, पृथ्वी पर के किसी अन्य उपद्वीप, द्वीप या महाद्वीप से नहीं। (आशाद्वीप की बात कहते-कहते रेवा जैसे भावावेश में आ जाती है।)

गुरुदेव : (जरा-सा मुस्कराकर) और स्वर्ग के सम्बन्ध में तुम क्या जानती हो ?

रेवा : स्वर्ग के सम्बन्ध में ? स्वर्ग तो स्वर्ग ही है। अनन्त विस्तार का एक असीम स्थल है। फल, फूल और सस्य-स्यामल वनस्पति से भरा हुआ-सा। पवित्रतम और सुशीतल जल के सैकड़ों झरने और बीसियों नदियां इस मैदान का प्रक्षालन करती है। एक तरफ़ श्वेत हिम-राशि से ढकी हुई आकाशचुम्बी पर्वत-श्रेणियां हैं और दूसरी ओर अगाध, अनन्त, नील महा-समुद्र। वहां दूध और घी की नदियाँ बहती हैं। वहां ऊँचे-ऊँचे प्रासाद हैं, सुन्दर उद्यान हैं।

वहाँ न बीमारी है, न दुख है और न असन्तोष है। वह स्वर्ग है, वह सुख का घर है। इस पृथ्वी के वासी उसकी कल्पना कर लेने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते है।

गुरुदेव : और अगर मैं तुम्हें बताऊँ कि तुम आशाद्वीपवासियों की कल्पना का यह स्वर्ग इसी पृथ्वी पर का एक देश है, तो क्या तुम इस पर विश्वास करोगी ?

रेवा : यह भी कभी सम्भव है ? ऐसी अकल्पनीय बात पर विश्वास किया ही किस तरह जा सकता है बाबा ?

गुरुदेव : नहीं, राजकुमारी ! तुम्हारी यह भ्रान्त धारणा है। किसी दिन तुम्हें मेरी इस बात पर विश्वास आ जाएगा। अच्छा, मैं तुमसे एक और बात भी पूछना चाहता हूँ।

रेवा : पूछिए।

गुरुदेव : मुझसे लज्जा नहीं करना बेटी ! विवाह के सम्बन्ध में तुम्हारे क्या विचार हैं ?

रेवा : (जरा-सा लज्जित होकर) मैं आपका मतलब नहीं समझी।

गुरुदेव : विवाह को तुम अच्छा समझती हो या बुरा ?

रेवा : मैंने कभी इस प्रश्न पर विचार नहीं किया।

गुरुदेव : अच्छा तुम विवाह करना चाहती हो या नहीं ?

रेवा : नहीं।

गुरुदेव : मुझे मालूम हुआ था कि महारानी इस सम्बन्ध में बहुत शीघ्र कोई निश्चय कर डालना चाहती हैं।

रेवा : सम्भव है कि यह बात ठीक ही हो।

[इसी समय पर्वत शिखर-सी ऊँची एक लहर बड़े ज़ोरों के साथ आती है और क्षण भर में गुरुदेव और रेवा के सम्पूर्ण शरीर को भिगोकर वापस लौट जाती है। रेवा सहसा घबराकर उठ खड़ी होती है, मगर गुरुदेव अपनी जगह से नहीं हिलते। बड़े ही मधुर भाव से मुसकराकर वह कहते हैं।]

गुरुदेव : हां, अब वह समय आने वाला है। परन्तु तुम घबराओ नहीं, राजकुमारी। उसी जगह, चाहे जिस आसन से बैठ जाओ। मैंने तुम्हें अभी बताया था न कि तुम पर आज कोई विपत्ति नहीं आएगी।

[रेवा अब के टांगें फैलाकर और हाथ पीछे की ओर टेककर बैठ जाती है। समुद्रतट पर का कोलाहल अब और भी विकट हो उठता है।]

गुरुदेव : अच्छा राजकुमारी, तुम जानती हो, यह शिव मन्दिर कब का बना हुआ है ?

रेवा : क्यों नही। बहुत-सी सदियां बीत गई, तक्ष नाम का एक महाशिल्पी न जाने कहाँ से आशाद्वीप में आया था। उसीने इस मन्दिर का निर्माण किया था। उसीने आशाद्वीपवासियों को सुन्दर-सुन्दर प्रासादों का निर्माण करना सिखाया था।

गुरुदेव : और रेवा तुम क्या जानती हो कि यह शिवजी महाराज कौन हैं ?

रेवा : (दोनों हाथ एक साथ मस्तक से लगाकर) भला मैं एक सामान्य-सी बालिका शिवजी महाराज के सम्बन्ध में क्या

जान सकती हूँ ! मैं तो इतना ही जानती हूँ कि वही इस सम्पूर्ण विश्व के संचालक हैं। तक्ष ने जब से आशाद्वीप में इस शिव-मन्दिर की स्थापना की, तभी से आशाद्वीप संसार का सबसे सुखी द्वीप बन गया।

गुरुदेव : मैं मानता हूँ कि तुम्हारा यह आशाद्वीप सचमुच संसार का सब के अधिक सुखी द्वीप है। वह भी शायद केवल इसी कारण कि बाकी संसार से इसका कहीं कोई सम्बन्ध नहीं है। अनेक दशाब्दियों में कभी कोई बड़ी नाव राह भटककर यहां आ लगे तो आ लगे, अन्यथा संसार के साथ तुम्हारा किसी तरह का कोई सम्बन्ध नहीं है।

[सहसा सम्पूर्ण आकाश बिजली की एक प्रचण्ड चमक से प्रभासित-सा हो जाता है और उसके कुछ ही क्षणों के बाद बादलों में से वज्रपात का-सा शब्द सुनाई देता है। साथ ही साथ मूसलाधार वर्षा टप-टप गिरने लगती है।]

गुरुदेव : (ज़रा आवेश के साथ) लो रेवा, वह क्षण अब आ पहुँचा ! (रेवा की गम्भीरता और भी बढ़ जाती है और वृद्ध गुरुदेव भावावेश में आकर उसका हाथ पकड़ लेते हैं।)

रेवा : (सहसा शान्त होकर) मैं बहुत अधिक डर गई थी, गुरुदेव ! मगर तुम्हारा यह निर्विकार चेहरा देखकर जैसे मेरा भय भी नष्ट हो गया। कहिए, आप मुझे क्या आदेश देना चाहते हैं।

गुरुदेव : सुनो रेवा, इस पृथ्वी के सब से अधिक गरिमाशाली देश का सन्देश लेकर एक विदेशी राजपुत्र बड़े-बड़े पालों

और ऊँचे-ऊँचे मस्तूलों वाले जहाज पर चढ़कर तुम्हारे इस आशादीप में आएगा। तुम उसकी प्रतीक्षा करना। विश्व भर में केवल वही एक पुरुष तुम्हारा दूल्हा बनने के योग्य है राजकुमारी!—इस बात को आजन्म याद रखना।

रेवा : उसके आने पर मैं क्या करूँ ?

गुरुदेव : मैंने तुम्हें अग्निचूर्ण (बारूद) के जो गोले बनाने की शिक्षा दी है, उन्हें तैयार रखना और उसके आने पर वे गोले चलाकर उसका स्वागत करना। उस राजकुमार को प्रसन्न करने और रिझाने का प्रयत्न करना।

रेवा : यह किसलिए ?

गुरुदेव : यह सब इसलिए कि वह तुम्हें स्वर्ग का सन्देश सुनाएगा। मैंने कहा न कि एकमात्र वही राजकुमार तुम्हारा दूल्हा बनने के योग्य है।

[रेवा आश्चर्य से गुरुदेव की ओर देखती रह जाती है। वह कुछ भी जवाब नहीं देती। क्षण भर रुककर गुरुदेव कहने लगते हैं]

गुरुदेव : और फिर, वह राजकुमार कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। उज्ज्वल वर्ण का स्वस्थ, सबल, एक नवयुवक, जिस की आंखों में सदा आह्लाद चमकता रहता है। उसकी वाणी में अनुशासन है और भुजाओं में असीम बल है। संसार का भविष्य उसके साथ है। मानव जाति के

इतिहास का एक महान् वीर और विजेता बनकर रहने के लिए ही उसका जन्म हुआ है।

[एक भयंकर लहर पुनः उसी चबूतरे पर आक्रमण करती है। परन्तु रेवा अब उसकी परवाह नहीं करती। वह जैसे बड़ी गम्भीरता के साथ कोई बात सोचती रहती है। प्रकृति के उपद्रव की ओर उसका ध्यान ही नहीं है।]

रेवा : (धीरे-धीरे जैसे स्वगत) आशाद्वीप से बाहर का राजकुमार ! वह बड़े-बड़े पालों और ऊंचे-ऊंचे मस्तूलों वाले जहाज पर चढ़कर इस द्वीप में आएगा ! और मुझे उसकी प्रतीक्षा करनी चाहिए ! (सहसा गुरुदेव की ओर देखकर) यह तुम्हारा कैसा आदेश है बाबा ? तुम किसी अन्य देश के राजकुमार को इतना महत्व कैसे दे रहे हो ? आशाद्वीप की राजकुमारी और वह किसी बाह्य विदेशी व्यक्ति की प्रतीक्षा करे !

गुरुदेव : देखो राजकुमारी, यह सब तुम्हारा भ्रम है। मनुष्य में जानने की, ज्ञान प्रप्ति करने की, जो चाह है, उसके कारण मनुष्य सभी वस्तुओं के सम्बन्ध में कुछ न कुछ जानने का प्रयत्न तो अवश्य करता है, परन्तु थोड़े-बहुत प्रयत्न से वह जो कुछ जान लेता है, उससे उसे बहुत शीघ्र गहरा मोह हो जाता है। वह समझता है, जैसे उसकी जानी हुई वह बात, उसी के हृदय की बात है और उसके अतिरिक्त उस बात के सम्बन्ध में जो कुछ भी है, वह सब भ्रम है, झूठ है, मिथ्या है। मनुष्य का

यह मोह क्रमशः परिवार, कुल, समाज और द्वीप की परिधियों में बढ़ते-बढ़ते और भी अधिक तीव्र, मलिन और पक्का हो जाता है। परिवार, कुल, समाज और द्वीपों की धारणाएँ तब विश्वास का रूप धारण कर लेती हैं और उन धारणाओं के विरुद्ध, समाज के निरीह सदस्यों के दुर्बल मस्तिष्क कुछ सोचने तक को भी धृष्टता समझने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि कुछ क्षेत्रों में मानव मस्तिष्क की ज्ञान की चाह ही नष्ट हो जाती है और उसकी जगह अनेक अन्धविश्वास अपनी गहरी जड़ जमा लेते हैं। आशाद्वीप के निवासियों और बाहर के लोगों में तुम जो भेद देख रही हो, वह भी इसी प्रवृत्ति का परिणाम है राजकुमारी रेवा !

[इसी समय दूर पर पहाड़ की-सी ऊँचाई की एक लहर दिखाई देती है। गुरुदेव ज़रा तीव्र स्वर में पुकारते हैं।]

गुरुदेव : सन्दीप ! बेटा सन्दीप !

[निकट की चट्टान के ऊपर से आवाज़ आती है।]

(नेपथ्य से) अभी आया गुरुदेव !

[और उसी क्षण दो बलिष्ठ भुजाएँ चट्टान से नीचे लटक जाती हैं और गुरुदेव रेवा से कहते हैं]

गुरुदेव : (व्यग्रता के साथ) जाओ राजकुमारी, इसी क्षण ऊपर सुरक्षित स्थान पर चली जाओ। वह देखो, वह ऊँची लहर बड़ी उमंगों के साथ मुझे न्यौता देने आ रही है। भगवान् तुम्हें सदा सुखी रखें रेवा !

[यन्त्रचालित के समान रेवा उन दोनों हाथों का सहारा लेकर चट्टान के ऊपर चढ़ जाती है। उसी क्षण वह पर्वताकार भीषण लहर उस चट्टान से आकर टकराती है। इस टकराहट से अत्यन्त भयानक कोलाहल उत्पन्न होता है। सहसा आकाश से बादल मूसलाधार पानी बरसाने लगते हैं। समुद्रतट पर खड़ी भीड़ जैसे अत्यधिक संत्रस्त होकर और भी तीखी आवाज़ में पुकारने लगती है। प्रकृति के इस भीषण कोलाहल में भी जैसे वह पुकार अस्पष्ट से कोलाहल के रूप में सुनाई देती है।]

दूर से : राजकुमारी ! राजकुमारी !!

[अनेक क्षणों तक प्रकृति अत्यन्त विक्षुब्ध रहती है। उसके बाद बिजली की एक भयंकर चमक के साथ वह लहर वापस लौट जाती है। रेवा मन्दिर के निकट एक ऊँची चट्टान पर खड़ी है। वर्षा की थपेड़ों से उसकी सम्पूर्ण देह भीग गई है और उसकी दृष्टि में गहरी गम्भीरता व्याप्त है। पानी धीरे-धीरे नीचे उतर रहा है और क्रमशः वह चबूतरा पानी से बाहर निकल आता है। राजकुमारी देखती है कि उस पर कोई भी नहीं है। गुरुदेव का कहीं कोई चिन्ह भी अवशिष्ट नहीं है। समुद्रतट का कोलाहल अभी तक उसी प्रकार जारी है। बहुत दूर पर जैसे अस्पष्ट-से स्वर में सैकड़ों कण्ठ मिलकर पुकार रहे हैं।]

दूर से : राजकुमारी रेवा ! राजकुमारी रेवा !!

रेवा : गुरुदेव ! गुरुदेव !!

दृश्य २

देश—*भारतवर्ष*
स्थान—*मदुरा का एक उपवन*
समय—*प्रभात*

[चोलराज की कन्या इन्दिरा पूर्व की ओर मुँह किए खड़ी है। उसकी पीठ पर अत्यन्त लम्बे, घने और काले बाल बिखरे हुए हैं। इन्दिरा के सम्मुख अपना-अपना सामान लिए बहुत से श्वेत वस्त्रधारी व्यक्ति खड़े हैं।]

इन्दिरा : आप लोग एक महान् उद्देश्य के लिए अपना जीवन अर्पित करने चले हैं। हमारे पूर्वजों ने अत्यन्त परिश्रम, कठोर साधना और अनवरत निष्ठा से ज्ञान और संस्कृति का जो दीपक इस देश में जगाया था, उसकी एक-एक लौ लेकर आप लोग संसार के सभी देशों में वही दीपक जलाने की इच्छा से अपनी मातृभूमि का परित्याग कर रहे हैं। यह चिनगारी आपके हृदयों में सदा सुलगती रहे, कभी बुझने न पाए—यही मेरी हार्दिक कामना है। मैं जानना चाहती हूँ कि आप लोगों में से अधिकांश का अब तक क्या धन्धा रहा है और किस प्रेरणा से आप यह महान् त्याग करने को उद्यत हुए हैं ?

[बाईं ओर सबसे किनारे पर खड़े एक नवयुवक की ओर लक्ष्य करके]

तुम्हारा नाम क्या है, युवक ?

युवक : मेरा नाम भद्रजित है।

इन्दिरा : तुम अब तक क्या काम करते रहे हो ?

युवक : आचार्य सुश्रुत की जगत्प्रसिद्ध संस्था से इसी वर्ष मैं स्नातक हुआ हूँ।

इन्दिरा : तुम कहाँ जा रहे हो ?

युवक : चम्पा।

इन्दिरा : किस इच्छा से तुमने चम्पा में जाने का निश्चय किया है ?

युवक : चम्पा में शीतज्वर का बहुत अधिक प्रकोप रहता है। मैं वहां महामति सुश्रुताचार्य की प्रणाली पर एक चिकित्सालय खोलना चाहता हूँ।

इन्दिरा : (एक अन्य युवक की ओर लक्ष्य करके) तुम ब्राह्मण-कुमार हो न ?

युवक : जी हां।

इन्दिरा : तुमने कितनी शिक्षा पाई है ?

युवक : मदुरा विश्वविद्यालय का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम मैंने समाप्त किया है। विश्वविद्यालय ने मुझे अधिकार दिया है कि मैं 'विद्यार्णव' कहलाऊँ।

इन्दिरा : तुम कहाँ जा रहे हो ?

ब्रा० युवक : चम्पा।

इन्दिरा : किस उद्देश्य से ?

ब्रा० युवक : महामति साँख्याचार्य्य के दार्शनिक सिद्धान्तों से मैं विशेषरूप से प्रभावित हुआ हूँ। चम्पा में जाकर मैं

साँख्य-आश्रम की स्थापना करना चाहता हूँ।

इन्दिरा : अपने जीवन-निर्वाह के लिए तुम्हारे पास कुछ धन है?

ब्रा० युवक : मैंने इसकी चिन्ता कभी नहीं की, राजकुमारी।

इन्दिरा : बहुत ठीक। (एक और युवक से जिसकी आकृति अधिकांश से नहीं मिलती) तुम चोल राज्य के मालूम नहीं होते हो युवक !

युवक : आपका अनुमान सत्य है।

इन्दिरा : राष्ट्रकूट से आ रहे हो ?

युवक : जी हाँ।

इन्दिरा : तुम्हारा नाम क्या है ?

युवक : गोविन्द।

इन्दिरा : क्या मैं तुम्हारा परिचय जान सकती हूँ ?

गोविन्द : राष्ट्रकूट राजवंश में मेरा जन्म हुआ है। वर्तमान राष्ट्रकूट सम्राट् मेरे चतुर्थ पितृव्य हैं।

इन्दिरा : फिर तुमने अपने सम्राट् की सेवा क्यों छोड़ दी ?

गोविन्द : मैं क्षत्रिय नहीं रहा, राजकुमारी। मेरी रुचि शिल्प की ओर थी। मैं क्षत्रिय से शिल्पी बन गया हूँ।

इन्दिरा : किस तरह के शिल्प की तुमने शिक्षा प्राप्त की है ?

गोविन्द : विश्वकर्मा कला के ढंग पर भवन निर्माण करने की नवीनतम पद्धति में मैंने प्रवीणता प्राप्त की है।

इन्दिरा : तुम कहाँ जा रहे हो ?

गोविन्द : काम्बोज।

इन्दिरा : किस उद्देश्य से ?

गोविन्द : मुझे मालूम हुआ है कि काम्बोज में भवन-निर्माण करने की बहुत श्रेष्ठ सामग्री उपलब्ध होती है। मैं उसका प्रयोग कर भवननिर्माण-कला में कुछ नए परीक्षण करना चाहता हूँ।

इन्दिरा : बहुत खूब ! मैं हृदय से तुम्हारी सफलता चाहती हूँ। (एक और युवक की ओर देखकर) और तुम्हारा क्या नाम है युवक ?

युवक : मेरा नाम मकरन्द है।

इन्दिरा : मैंने पहले भी शायद तुम्हें कहीं देखा है ?

मकरन्द : जी हाँ। मैं अपने पिता जी के साथ राजमहलों में अनेक बार आया हूँ। पिता जी प्रायः आपके यहाँ आते-जाते रहते हैं।

इन्दिरा : ओहो, तुम राजश्रेष्ठि के पुत्र हो ! तुम किस उद्देश्य से विदेश जा रहे हो ?

मकरन्द : मैं व्यवसाय की इच्छा से विदेश जा रहा हूँ।

इन्दिरा : कहां ?

मकरन्द : यह मुझे अभी तक स्वयं भी मालूम नहीं राजकुमारी!

इन्दिरा : (मुस्कराकर) बहुत खूब ! अच्छा, यह तो तुम्हें मालूम है न कि कौन-सा व्यवसाय करने की तुम्हारी इच्छा है ?

मकरन्द : सच बात तो यह है कि मैं इस सम्बन्ध में भी अभी तक कुछ नहीं जानता।

इन्दिरा : अपने पिता जी से तुमने कोई आर्थिक सहायता ली है ?

मकरन्द : नहीं राजकुमारी, मैं बिना किसी प्रकार की आर्थिक सहायता के अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता हूँ। पिता जी से मैं किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नहीं लूँगा।

इन्दिरा : यह क्यों मकरन्द ? तुम्हारे पिता यदि चाहें तो सहज ही में वह तुम्हें कोई द्वीप का द्वीप ही खरीदकर दे सकते हैं। तुम उनसे आर्थिक सहायता लेना पसन्द क्यों नहीं करते ?

[मकरन्द सिर झुकाकर चुपचाप खड़ा रहता है।]

इन्दिरा : कहो, तुम्हें उनसे धन माँगने में लज्जा प्रतीत होती है क्या ? यही बात है तो तुम्हारी ओर से मैं उनसे निवेदन कर दूँगी।

मकरन्द : ऐसा न कीजिएगा राजकुमारी। आपकी दया होगी। मैं किसीसे किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नहीं चाहता।

इन्दिरा : परन्तु आखिर इसका कारण क्या है ?

मकरन्द : (ज़रा लज्जा के साथ सिर झुकाकर) कारण यही है कि कल मेरे पिता जी ने मुझे एक ताना दिया था।

इन्दिरा : वह क्या ?

मकरन्द : जहाज़ों में एक नए प्रकार के यन्त्र लगाने का परीक्षण करने के लिए जब मैंने उनसे कुछ धन माँगा, तो उन्होंने कहा कि धन का संग्रह करना जितना कठिन

है, उसे बहा देना उतना ही आसान है। मैं उन्हें दिखा देना चाहता हूँ, कि मेरे लिए धनोपार्जन करना भी उतना ही सहल, है जितना उस का व्यय करना।

इन्दिरा : (ज़रा मुस्करा कर) बहुत ठीक ! ईश्वर तुम्हारी इच्छा पूरी करें। (एक बालक की ओर देखकर) तुम यहां कैसे आए किशोर ? तुम भी विदेश जाओगे क्या ?

(बालक मुँह से जवाब नही देता। केवल सिर हिलाकर स्वीकृति प्रकट करता है।)

इन्दिरा : तुम्हारे माता-पिता नहीं हैं क्या ?

बालक : (बड़े संकोच के साथ) मै घर से भाग आया हूँ।

इन्दिरा : भागे किस लिए ?

बालक : विदेश यात्रा की इच्छा से।

इन्दिरा : तुम कहां जाना चाहते हो ?

बालक : जहां पर जी लग जाए।

इन्दिरा : परन्तु तुम्हारे माता-पिता को इस बात से कितना कष्ट पहुँचेगा।

बालक : नहीं राजकुमारी। मेरे चाचा भी इसी तरह घर से भाग गए थे। और आज वह चम्पा के अत्यन्त महत्वपूर्ण नागरिकों में गिने जाते हैं।

इन्दिरा : (ज़रा मुस्कराकर) तो यह कहो कि घर से भागना तुम्हारे कुल में वंशपरम्परागत है !

[इसी समय राजकुमार परान्तिक को साथ लिए चोलराज का प्रवेश। सभी लोग सैनिक ढंग से उनका अभिवादन करते हैं और चोलराज उनका प्रत्यभिवादन करते हैं।]

चोलराज : आज के इन विदेश-यात्रियों से तुम मिल लीं बेटी ?

इन्दिरा : जी हां, पिता जी।

चोलराज : इस वर्ष का यह कौन-सा जत्था है ?

इन्दिरा : पांचवां। इन लोगों को बिदाई देते हुए हर बार मेरा जी भर आता है। इच्छा होती है, कभी किसी जत्थे के साथ मैं भी विदेश के लिए रवाना हो जाऊँ।

चोलराज : (धीमी-सी हँसी हँसकर) यदि चोल राज्य की शक्ति इसी तरह क्षीण होती चली गई तो तुम्हारे और परान्तिक के लिए विदेश-यात्रा के अतिरिक्त और चारा भी क्या रहेगा ! खैर, छोड़ो इन बातों को। इन लोगों से कहो कि राज-भण्डार में जाकर अपने लिए यथोचित वस्त्र तथा अन्य सामग्री ले लें।

इन्दिरा : (यात्रार्थियों से) आप लोग अब राज-भण्डार में जा सकते हैं।

(सब का प्रणाम करके प्रस्थान। केवल चोलराज, इन्दिरा और परान्तिक ही वहां रह जाते हैं। चोलराज की अन्तिम बात से इन्दिरा के प्रसन्न चेहरे पर उदासी की हल्की-सी रेखा छा जाती है, और वह अपने छोटे भाई परान्तिक को निकट खींच कर उसके सिर पर हाथ फेरने लगती है।)

चोलराज : तुम्हारा मुँह इस तरह मुरझा क्यों गया इन्दिरा ?

इन्दिरा : आप सब लोगों के सामने इस तरह की निराशापूर्ण बातें क्यों कहना शुरू कर देते हैं पिता जी !

चोलराज : इसमें कुछ अनौचित्य था क्या बेटी ?

इन्दिरा : अनौचित्य की बात मैं नहीं कहती पिता जी। मैं तो कहती हूँ कि हम लोग इस तरह निराश क्यों हो जाएँ ! हम में से आत्मविश्वास क्यों नष्ट हो जाए ?

चोलराज : मैंने जीवन देखा है, इन्दिरा। अपने वंश के प्राचीन गौरव की महिमामयी गाथाएं भी मैंने सुनी हैं। चोल-वंश की विचलित भाग्यश्री को फिर से स्थिर बनाने का मैंने जी-जान से प्रयत्न भी किया है, परन्तु !··· बेटी, मुझे समझ नहीं आता कि इस 'परन्तु' के बाद मैं तुम से क्या कहूँ।

इन्दिरा : यह आप क्या कहते हैं पिता जी ? याद है, एक दिन आप ही ने तो मुझसे कहा था कि "हम चोल राजवंश के उत्तराधिकारी हैं। इसी कारण निराशा के अधिकार से हम लोग वंचित हैं; पराजय स्वीकार कर लेने का आनन्द हम लोगों के भाग्य में लिखा ही नहीं !" वह सब आप भूलते क्यों जा रहे हैं ?

चोलराज : वह सब मुझे याद है बेटी। परन्तु जीवन के सम्बन्ध में क्रमशः मेरा दृष्टिकोण ही बदलता जा रहा है। कभी तुमने सोचा कि यह महान भारतवर्ष सदियों तक एक

विशाल और शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में रहकर भी आज पुनः बीसियों छोटे-छोटे और दुर्बल-से राज्यों में क्यों विभक्त हो गया ! मैंने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ सोचा है और वही सब कुछ सोच कर मेरा हृदय निराशा के बोझ से दबता चला जा रहा है।

इन्दिरा : आपने क्या सोचा है पिता जी ?

चोलराज : मैं सोचता हूँ कि सभ्यता के उच्चतम शिखर पर पहुँचकर भी हमारे राष्ट्र की जिन आधारभूत दुर्बलताओं ने हमें निर्बल बना दिया, उन दुर्बलताओं की ओर हम लोगों का ध्यान क्यों नहीं जाता ?

इन्दिरा : वे दुर्बलताएं कौन-सी हैं पिता जी ?

चोलराज : हम मनुष्य को मनुष्य के रूप में नहीं देखते । उसे हम धर्म, आचार-व्यवहार, दर्शन और सिद्धान्तों के आवरण के साथ देखना और पहचानना चाहते हैं। यही चीज़ हम लोगों को परस्पर अधिकाधिक विभक्त करती चली जा रही है। राजनीतिक साम्राज्य स्थापित करके भी, हम अपने चोलवंश को चाहे कितना ही शक्तिशाली क्यों न बना लें, सम्पूर्ण देश में जीवन और शक्ति का संचार नहीं कर सकते ।

इन्दिरा : इसका क्या कोई उपाय नहीं है पिता जी ?

चोलराज : उपाय ? उपाय क्यों नहीं है। इसका सबसे उत्तम उपाय तो वही है, जिसका तुम अवलम्बन कर रही हो बेटी।

इन्दिरा : मैं नासमझ लड़की भला किस उपाय का अवलम्बन कर रही हूँ ?

चोलराज : वह यही कि भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रसार किया जाए। भारतवर्ष अन्य देशों से सम्बद्ध रहे। हम लोग फैलें। जिस तरह पिघला हुआ लोहा फैलकर अपने सम्पूर्ण मल को खो देता है, उसी तरह हम भी फैलें। जिस तरह नदी बढ़कर आसपास की भूमि का मल बहाकर उसे उपजाऊ और सस्य-श्यामल बना देती है, उसी तरह हम भी फैलें। हम लोगों की आन्तरिक दुर्बलताएं इसी संघर्ष से दूर होंगी। और कोई उपाय नहीं है बेटी। संसार भर के सम्पूर्ण देशों पर भारतवर्ष का प्रभाव है। अन्य देश अभी तक हमें संसार का सर्वप्रथम देश समझे हुए हैं। परन्तु यहां भीतर ही भीतर सभी कुछ जर्जरित होता चला जा रहा है। यह परिस्थिति कब तक चलेगी! हमारी आन्तरिक दुर्बलता पर कब तक परदा पड़ा रह सकेगा! आखिर यह कब तक छिपा रहेगा कि हम लोगों में परस्पर आधारभूत एकता का तत्व तक नहीं है ?

इन्दिरा : आप बिल्कुल ठीक कहते हैं पिताजी !

चोलराज : (जरा-सा मुस्कराकर राजकुमार परान्तिक से) परन्तु हे भावी चोलराज ! तुम अपने हृदय पर मेरी इन निराशा-भरी बातों का कोई भी प्रभाव मत पड़ने देना।

(दोनों से) धूप बहुत तेज़ हो गई । चलो, महलों की ओर चलें ।

[सब का प्रस्थान]

दृश्य ३

देश—*काम्बोज ।*
स्थान—*अंगकोरथोम के राजमहलों में यशोवर्मा का निजी कमरा ।*
समय—*रात ।*

[एक काफी लम्बा-चौड़ा कमरा है । कमरे में दरवाजे नहीं हैं, उनकी जगह रेशम के भारी-भारी परदे लटक रहे हैं । इन परदों पर फणदार सांप, पर्वत-शिखर और शिव मन्दिर अंकित हैं । कमरे की छत मेहराबदार है । पीछे की दीवार के निकट लकड़ी की एक शैया पड़ी है, जिस पर मोटा गद्दा और उस पर रेशम की स्वच्छ चादर बिछी है । दोनों ओर पीतल के दो ऊँचे-ऊँचे शमादान हैं, इनका आकार भी सांप का-सा है । इन सांपों के फणों पर सुगन्धित तेल में सनी चार-चार बत्तियाँ जल रही हैं । तेल में कोई ऐसी चीज़ मिला दी गई है, जिससे प्रकाश में उजलापन आ गया है । दीवारों पर रंगीन चित्र बने हुए हैं । कमरे में अधिक सामान नहीं । शैया पर राजकुमार यशोवर्मा कोहनी के सहारे आधे लेटे हुए हैं और उनके पैर मसनद की ओर हैं । यशोवर्मा की शैया के निकट लकड़ी के दो उपवेशन पड़े हैं । इन पर काम्बोज के सेनापति

श्रीदेव तथा युवराज के परम मित्र जनार्दन बैठे हैं। मन्त्रणा हो रही है। बाहर घना अन्धकार है। कमरे में सिर्फ़ एक बड़ा वातायन है और उस वातायन में से तारोंभरे आकाश का कुछ भाग दिखाई दे रहा है। निकट के महलों से गाने-बजाने की आवाज़ सुनाई पड़ रही है।]

जनार्दन : इस बात पर मेरी तुम्हारी राय कभी नहीं मिलेगी!

यशोवर्मा : यदि तुम निश्चय ही कर लो कि मेरी राय से अपनी राय कभी न मिलने दोगे, तब तो दूसरी बात है। अन्यथा मेरा ख्याल है कि हम दोनों एक दूसरे से सहमत हो भी सकते हैं।

जनार्दन : देखो भाई, मुझे पूरा विश्वास है कि पुण्डरीक मनुष्य नहीं देवता हैं। वह सचमुच एक अवतार पुरुष हैं, और तुम उनकी बात का भी विश्वास नहीं करते!

यशोवर्मा : विश्वास क्यों नहीं करता। विश्वास ही नहीं, मैं उन पर श्रद्धा करता हूँ। परन्तु यह तो एक मौलिक मतभेद का प्रश्न है। यहां विश्वास और श्रद्धा की अपेक्षा तर्क और संस्कार अधिक शक्तिशाली सिद्ध होते हैं।

जनार्दन : तो क्या तुम्हारा मतलब यह है कि तर्क और संस्कार तुम्हारे ही पक्ष में हैं?

यशोवर्मा : मैं यह दावा नहीं करता कि मेरा ही तर्क ठीक है, परन्तु क्या तुम इस बात को भी नहीं मानते कि ऋषि पुण्डरीक और हम लोगों के संस्कार एकदम भिन्न हैं?

जनार्दन : हां, इस बात से मैं इन्कार नहीं कर सकता।

यशोवर्मा : मेरा मतलब तो यह था कि तर्क तो सदा व्यक्तिगत संस्कारों का अनुसरण करता है। ऋषि पुण्डरीक जिस देश से आए हैं, उस देश की परिस्थितियां हमारे इस देश से बहुत भिन्न हैं। वे जिन आदर्शों की शिक्षा हमें दे रहे हैं, उनसे मैं पूरी तरह सहमत हूँ। परन्तु उन आदर्शों के प्रसार का जो मार्ग उन्होंने बताया है, वह मेरी दृष्टि में एकदम अव्यवहार्य है। उससे सफलता मिल ही नहीं सकती।

जनार्दन : ऋषि पुण्डरीक तुम से क्या चाहते हैं ?

यशोवर्मा : ऋषि पुण्डरीक का कथन है कि शस्त्र-बल से शास्त्र-बल सदा श्रेष्ठ है।

जनार्दन : तो इसमें गलती कहां है ?

यशोवर्मा : इसमें गलती उसी जगह पर आती है, जहाँ राज्य का संचालन भी शस्त्र की बजाय केवल शास्त्र के बल पर करने का प्रयत्न किया जाता है।

जनार्दन : तो क्या आचार्य शस्त्र-बल का व्यवहार करने की अनुमति ही नहीं देते ?

यशोवर्मा : यह बात तो नहीं है। पर जहां तक दिग्विजय का प्रश्न है, आचार्य पुण्डरीक का कथन है कि विदेशों में केवल अपनी सांस्कृतिक श्रेष्ठता के आधार पर ही कोई देश अपना प्रभाव बढ़ा सकता है। जो देश शस्त्र के आधार पर विजय करने का प्रयत्न करते हैं, वे अपहरण करते हैं।

जनार्दन : यह बात तो सचमुच कुछ विचित्र-सी है ।

यशोवर्मा : वास्तव में आचार्य पुण्डरीक एक ऐसे देश से आए हैं, जिसका साँस्कृतिक धरातल बहुत ऊँचाई पर पहुँच चुका है। उनका आदर्श संसार भर के देशों के लिए आदर्श नहीं हो सकता। विशेषकर वे राष्ट्र, जो साम्राज्य स्थापना के स्वप्न देखते हैं ।

जनार्दन : जैसे कि तुम । अच्छा भाई, सदा की तरह आज भी मैं मान गया कि तुम हारे और मैं जीता ! चलो अब तो छुट्टी हुई !

[यशोवर्मा और श्रीदेव हँस पड़ते हैं ।]

यशोवर्मा : बहुत खूब । तुम जरूर जीत गए । और वह भी सदा की तरह । मगर बात तो वहीं की वही रही । सेनापति श्रीदेव, तुम्हीं बताओ कि साम्राज्य-स्थापना के इस शुभ कार्य का श्रीगणेश किस तरह किया जाए ?

जनार्दन : जाने भी दो इन पचड़ों को । इसी महीने तुम्हारा राज्याभिषेक है और तुम आज इन पचड़ों को लिए बैठे हो ! ज़रा मज़े-मज़े में राज्याभिषेक तो हो जाने दो, उसके बाद दिग्विजय के अतिरिक्त और तुम्हें कार्य ही क्या है । वह सुनते नहीं, राजमहल की देवियां तुम्हारे राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में ही मंगलगीत गा रही है ।

यशोवर्मा : देखो भाई जनार्दन, दो-एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा गोपनीय बातों के लिए मैंने आज तुम्हें और सेनापति को

यहां आने का कष्ट दिया है। वे बातें राज्याभिषेक की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं।

जनार्दन : (सहसा और गम्भीर भाव से) अच्छा, बताओ वह गोपनीय बात कौन-सी है ?

यशोवर्मा : मैं अपना राज्याभिषेक न होने दूँगा।

[जनार्दन और सेनापति श्रीदेव सहसा चौंक पड़ते हैं।]

दोनों : (एक साथ) यह क्यों ?

यशोवर्मा : चचा जी का ख्याल है कि मैं अब युवक हो गया हूँ, इससे उन्हें मेरी थाती मुझे वापस कर देनी चाहिए। मेरे पिताजी ने जब उन्हें मेरा भार सौंपा था, तब कुछ इसी प्रकार की आशा उन्होंने अपने छोटे भाई से की भी थी। परन्तु बहुत सोच-विचारकर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि अभी मुझे राजकार्य का बोझ अपने सिर पर नहीं लेना चाहिए। चचा जी अभी कुछ ऐसे वृद्ध भी नहीं हो गए कि वह राजकार्य ठीक तौर से संभाल न सकें।

जनार्दन : परन्तु युवावस्था में पहुँचकर भी आप अपने उत्तरदायित्व से किस प्रकार विमुख हो सकते हैं ? यह तो आपका कर्तव्य है।

यशोवर्मा : यह सब मैं जानता हूँ। परन्तु यह तो मैंने नहीं कहा कि मैं अपना कर्तव्य पालन करूँगा ही नहीं। बात यह है कि मेरी दृष्टि में राज्यसञ्चालन से भी बढ़कर मेरा

कर्तव्य है, राज्य का विस्तार; एक साम्राज्य की स्थापना। मैं वही काम करूँगा।

जनार्दन : फिर वही बातं। तो तुम ऋषि पुराडरीक का कहा भी नही मानोगे ?

यशोवर्मा : ऋषि पुराडरीक का कहना ? अभी तो मैं तुम्हें सब बात समझा चुका हूँ। दूसरी बात यह है कि वास्तव में उन्हीं के सन्देश की पूर्त्ति ही तो मेरी इस दिग्विजय की लालसा का वास्तविक कारण है।

जनार्दन : क्या खूब ! वह तो कहते हैं कि क्रोध को अक्रोध से जीतो और शत्रु को मित्रता से विजय करो। आस-पास के सभी द्वीप-प्रायद्वीपों का, अपनी शक्ति के बल पर विजय कर तुम ऋषि पुण्डरीक का सन्देश किस तरह पूरा करोगे, यह मेरी समझ में नहीं आया।

यशोवर्मा : देखो जनार्दन, मैं मानता हूँ कि पुण्डरीक शस्त्र-विजय के विरुद्ध हैं। वह शस्त्र-विजय की अपेक्षा हृदय की विजय को अधिक महत्व देते हैं। परन्तु 'विजय' के सिद्धान्त से तो वह सहमत है न ? यह साँस्कृतिक विजय विश्व भर का कल्याण करेगी, यही तो उनका सन्देश है। अन्तर इतना ही है कि सांस्कृतिक विजय के सम्बन्ध में पुण्डरीक की कल्पना कवितामय है और मेरी कल्पना, इन द्वीपों और प्रदेशों की दृष्टि से, व्यावहारिक है। (कहते-कहते सहसा यशोवर्मा जैसे उत्तेजित हो उठते हैं और उठकर बैठ जाते हैं।)

तुमने नदी की बाढ़ देखी होगी जनार्दन ! जब बाढ़ आती है तो यही होता है न कि नदी में पानी इतना अधिक बढ़ जाता है कि वह दोनों किनारों में पूरा नहीं समाता। तब वह स्वयं बिना किसी प्रयास के दूर-दूर तक फैल जाता है। ऋषि पुण्डरीक की सांस्कृतिक विजय की कल्पना ठीक नदी की बाढ़ के समान है। दूसरी ओर मेरी कल्पना नहरों से जलसिञ्चन के समान है। मिट्टी खोदो। नहरें बनाओ और नदी से पानी लेकर मरुभूमि को भी उपजाऊ बना दो। उद्देश्य तो एक ही है, केवल साधन का अन्तर है।

जनार्दन : तुम से बहस करके कभी कोई जीता है भाई ! मगर अभी तक तो विदेशों के लिए प्रयुक्त सेना द्वारा तुम कितने ही छोटे-छोटे द्वीपों को विजय करते रहे। अब बड़े प्रदेशों की विजय के लिए काम्बोज के महाराज बने बिना काम्बोज की सेना के बड़े भाग को इस द्वीप से बाहर तुम किस अधिकार से ले जा सकोगे ?

यशोवर्मा : हाँ, ये सब बातें सोचने के लिए ही तो मैंने तुम्हें बुलाया है। कहिए सेनापति, आपकी क्या राय है ?

श्रीदेव : काम्बोज की सम्पूर्ण नौसेना का मुकाबला आसपास के किसी भी द्वीप की सेना नहीं कर सकती। परन्तु इस सम्बन्ध में महाराज हम लोगों को क्या आदेश देंगे, यह अभी से कैसे जाना जा सकता है ?

यशोवर्मा : इस ओर से आप लोग निश्चिन्त रहें। यह मेरा कार्य है। आप यह बतलाएँ कि सब से पहले किस द्वीप पर आक्रमण करना चाहिए।

[अचानक ऐसा प्रतीत होता है, जैसे राजमहलो से सुनाई देने वाला सगीत क्रमशः निकट आता चला आ रहा है।]

जनार्दन : (सहसा चौककर) यह क्या ? सभी राजमहिलाएं इसी ओर चली आ रही है क्या ?

यशोवर्मा : प्रतीत तो कुछ ऐसा ही होता है।

श्रीदेव : आज आश्विन की कृष्णा एकादशी है न ? इसी महीने आपका राज्याभिषेक है। एकादशी की रात को राजमहलों की देविया युवराज की आरती उतारा करती हैं न ? आप तो आज उधर गए नही। प्रतीत होता है कि राजमहिलाएं स्वय इधर चली आ रही है।

यशोवर्मा : तब तो अच्छी मुसीबत में फंसे !

जनार्दन : जरा-सी बात से इतना घबरा गए ! अभी तुम सेनापति से पूछ रहे थे कि सबसे पहले किस द्वीप पर आक्रमण करना चाहिए। तुम खाक किसी पर आक्रमण करोगे !

यशोवर्मा : आक्रमण की चिन्ता फिर कर लेना। पहले यह बताओ कि महिला जाति के इस आक्रमण से किस प्रकार बचा जाए ?

[सगीत की ध्वनि बहुत निकट आ जाती है।]

जनार्दन : (खिलखिलाकर हँसते हुए) यही तुम्हारा साहस है युवराज ?

[यशोवर्मा उठ खड़े होते हैं। उन्हें जब और कुछ नहीं सूझता तो वह कमरे की सभी बत्तियां एक साथ बुझा देते हैं।]

यशोवर्मा : (अपूर्ण अन्धकार में अपनी शैया तक पहुंचते हुए) जनार्दन, श्रीदेव, तुम दोनों भी चुपचाप अपने-अपने स्थान पर बैठे रहो। हम सब लोग यहां मौजूद हैं, यह किसी को ज्ञात नहीं होना चाहिए।

[कमरे के बाहर प्रकाश और कोलाहल। परदों से छन-छनकर हल्का-हल्का आलोक यशोवर्मा की शैया पर भी पड़ता है। यशोवर्मा एक चादर ओढ़कर लेट जाते हैं। जनार्दन और श्रीदेव अपनी जगह बैठे रहते हैं। संगीत रुक जाता है और बाहर से आवाज़ आती है।]

एक स्त्री-कण्ठ : युवराज कहां हैं ?

दूसरा ,, : भीतर ही होंगे।

तीसरा ,, : यहां तो अन्धकार है।

चौथा ,, : दूर से तो यह भवन आलोकित प्रतीत हो रहा था।

पांचवां ,, : यह बात क्या है ! युवराज सो गए क्या ?

छठा ,, : चलो, उन्हें जगा लिया जाए।

अनेक स्त्री-कण्ठ : युवराज ! युवराज !!

[भीतर से कोई आवाज़ नहीं आती।]

एक स्त्री कण्ठ : क्यों न भीतर चलकर देखा जाए ?

दूसरा ,, : रोशनी आगे करो।

तीसरा ,, : चलो, भीतर चलो।

जनार्दन : भीतर आने का कष्ट आप लोग न करें। युवराज नारी-आक्रमण का सपना देखकर पहले ही डर रहे हैं।

[बाहर से हंसी की आवाज। सभी देवियां आलोक के साथ कमरे के भीतर चली आती है। युवराज घबराकर उठ खड़े होते है। महिलाएँ उनके गले में फूलो की मालाएँ पहनाती हैं। चांदी का एक थाल वे अपने साथ लाई है। इस थाल में घी के दीपक जल रहे है। युवराज के चारो ओर घेरा बनाकर उनकी आरती करते हुए, राज-महिलाएँ गाने लगती है।]

गीत

प्रिय, मेरे गीले नयन बनेंगे आरती !
श्वासों में सपने कर गुम्फित
बन्दनवार वेदना चर्चित
भर दुख से जीवन का घट नित
मूक क्षणों में मधुर भरूँगी भारती !
दृग मेरे दो दीपक झिलमिल
भर आँसू का स्नेह रहा ढुल
सुधि तेरी अभिराम रही जल
पदध्वनि पर अलोक रहूँगी वारती !
प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती !

गीतकार : महादेवी वर्मा

दूसरा अङ्क

दृश्य १

देश—*काम्बोज*
स्थान—*ऋषि पुंडरीक का आश्रम*
समय—*मध्याह्नपूर्व*

[पर्वत की हरी-भरी उपत्यका में फूँस की आठ-दस झोंपड़ियाँ हैं। छोटी-छोटी परन्तु स्वच्छ। इन झोंपड़ियों के सम्मुख एक खुला मैदान है, जिसमें जगह-जगह सुन्दर फूलों की क्यारियाँ लगी हुई हैं। झोंपड़ियों के निकट बकुल के तीस-पैंतीस घने-घने वृक्ष हैं। इन वृक्षों की छाया में एक जगह दस-बारह श्वेत वस्त्रधारी विद्यार्थी बैठे हैं और उनके सम्मुख उच्चासन पर बैठकर ऋषि पुण्डरीक उन्हें शिक्षा दे रहे हैं।]

पुण्डरीक : अच्छा पुत्रो, पिछले साल वज्रा नदी की बाढ़ तुम

लोगों में से किस-किस ने देखी थी ? जिन विद्यार्थियों ने उसे देखा था, वे अपने हाथ खड़े कर दें।

[पांच विद्यार्थी अपने हाथ उठा देते हैं।]

पुण्डरीक : (उन्हीं में से एक विद्यार्थी से) विनय, तुम्हें याद है कि तब तुमने क्या देखा था ?

विनय : अवश्य। मुझे सभी कुछ पूरी तरह याद है। उस-बाढ़ को मैं आजीवन नहीं भूल सकता आचार्य !

पुण्डरीक : तुमने उस दिन क्या देखा ?

विनय : नदी के ठीक किनारे हम लोगों का घर था। अपने बाबा और भाइयों के साथ मैं वहीं खड़ा था। मां उस दिन मेरे मामा के घर गई हुई थीं। हम लोग बड़े भय के साथ नदी की ओर देख रहे थे। नदी में भयंकर लहरें उठ रही थीं। पानी किनारे के ऊपर तक आया हुआ था। दूसरा किनारा मानो दीख ही न पड़ता था। धार इतनी तेज़ थी कि उसे देखने में भी डर प्रतीत होता था। उसमें बड़े-बड़े वृक्ष, तने, झाड़-झंखाड़, जानवर और भी न जाने क्या-क्या बहते चले जा रहे थे। बड़ा भयंकर दृश्य था।

पुण्डरीक : उसके बाद ?

विनय : हमारे देखते ही देखते नदी का पानी किनारे तोड़कर बढ़ चला। हम लोग भागे। प्रयत्न किया कि अपना सामान पानी से बचा लें। परन्तु यह असम्भव था। हम

लोग घर का सभी सामान उसी जगह छोड़कर भागे। नदी का वेगयुक्त पानी जैसे हमारा पीछा कर रहा था। हमारे घर से पांच-छः मील पर एक टीला है। हम लोग भागे-भागे वहां तक जा पहुँचे। उस टीले पर और भी सैकड़ों मनुष्य एकत्र थे। हम लोग भी, थके-हारे एक जगह जाकर पड़ रहे।

पुण्डरीक : और तब ?

विनय : सायंकाल होते न होते हम लोगों ने देखा कि उस टीले के चारों ओर, जहां तक नज़र जाती थी, जल ही जल हो गया है। आस-पास के वृक्ष इस जल में छोटी-छोटी नौकाओं के समान प्रतीत होते थे।

पुण्डरीक : बहुत ठीक। अच्छा पुत्रो, यह बताओ कि तुम लोगों में से समुद्र किस-किसने देखा है ?

[बिना अपवाद के सभी विद्यार्थी अपने हाथ खड़े कर देते हैं।]

पुण्डरीक : अच्छा विनय, तुमने नदी की बाढ़ भी देखी है और समुद्र भी देखा है। तुम बतलाओ कि कभी तुमने यह भी देखा कि समुद्र अपने किनारे तोड़कर बह निकले ?

विनय : यह तो नहीं देखा आचार्य। हां, समुद्र का गर्जन-तर्जन अवश्य सुना है।

पुण्डरीक : तुम लोगों में से कभी किसी ने यह भी सुना है कि समुद्र में बाढ़ आ जाने से समुद्र अपने किनारों को छोड़कर उनसे बहुत आगे बढ़ गया, जिस तरह उस दिन वज्रा नदी बढ़ गई थी ?

विनय : यह भी कभी सम्भव है आचार्य ! समुद्र में भी कभी बाढ़ आ सकती है ? समुद्र तो समुद्र है। तभी तो उसे 'स्वप्रतिष्ठ' कहा जाता है।

पुण्डरीक : भला विद्यार्थियो, यह तो बताओ कि वज्रा नदी आखिर कहां चली जाती है ?

विनय : नदियां तो सभी समुद्र में जाती हैं। वज्रा भी समुद्र ही में जाती है।

पुण्डरीक : इस पृथ्वी पर की सभी नदियाँ, सैकड़ों बड़ी-बड़ी नदियाँ, समुद्र में ही तो जाकर मिलती हैं न ?

सभी विद्यार्थी : जी हां।

पुण्डरीक : फिर भी समुद्र में कभी बाढ़ नहीं आती ?

सभी विद्यार्थी : कभी नहीं।

पुण्डरीक : तुम्हारी सभी इच्छाओं का आधार तुम्हारा मन है न ? जिस तरह ज़रा-सी तेज़ वर्षा हो जाने से नदी में बाढ़ आ जाती है, उसका पानी किनारों को तोड़-फोड़ कर बाहर निकलने लगता है, उसी तरह कमज़ोर व्यक्तित्व के मनुष्य का हृदय इच्छाओं की बाढ़ के सामने पराजय स्वीकार कर लेता है; वह असंयमित, पथभ्रष्ट और उच्छृंखल बन जाता है। परन्तु जिस मनुष्य का व्यक्तित्व समुद्र के समान विशाल, गम्भीर और 'स्वप्रतिष्ठ' है, वह इच्छाओं के प्रबल प्रवाह को अपने भीतर उसी तरह पचा जाता है, जिस तरह समुद्र सैकड़ों, हज़ारों नदियों को सहज ही में पचा लेता है। ऐसे ही व्यक्ति

को शान्ति प्राप्त होती है। समझे बच्चो ? अच्छा विनय, तुम गीता के दूसरे अध्याय के इस अगले श्लोक का उच्चारण तो करो।

विनय : (पढ़ता है)

आपूर्यमाणं अचल प्रतिष्ठं,
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत् कामाः यं प्रविशन्ति सर्वे,
स शान्तिमाप्नोति न काम कामी।*

पुण्डरीक : इस श्लोक का भाव तुम लोग समझ गए न ?

सभी विद्यार्थी : जी हां।

पुण्डरीक : हां, कल तुम क्या पूछना चाहते थे विनय ?

विनय : लड़ाई-भिड़ाई और मारकाट क्या कोई अच्छी चीज़ है आचार्य ?

पुण्डरीक : साधारणतया किसी को कष्ट पहुँचाना बहुत बुरा है।

विनय : तो फिर गीता के आधारभूत उपदेश की प्रतिष्ठा हम लोग क्यों करें ? आख़िर उसका उद्देश्य अर्जुन को युद्ध करने के लिए उकसाना ही तो था न।

पुण्डरीक : मैं मानता हूँ कि साधारण दशाओं में लड़ना-भिड़ना अच्छी चीज़ नहीं है। परन्तु ऐसी परिस्थिति भी आ सकती

---

* इस भरे हुए, अचल और प्रतिष्ट समुद्र में जिस तरह पृथ्वी की सभी नदियां समा जाती हैं, उसी तरह जिस व्यक्ति में सभी कामनाएँ समाविष्ठ हो जाती हैं, वही शान्ति प्राप्त करता है; इच्छाओं के अधीन रहने वाले व्यक्ति को शान्ति नहीं मिलती।

है, जब शान्त रहना और अत्याचार सहना संसार का निकृष्टतम पाप बन जाता है और शस्त्र लेकर आततायी का विध्वस कर देना महान पुण्य का कारण हो जाता है।

[दूर पर कुछ धूल-सी उड़ती हुई दिखाई देती है। एक विद्यार्थी का ध्यान उस ओर जाता है। उसे जैसे कुछ आभास-सा मिल जाता है।]

विद्यार्थी : वह दूर पर राजकीय रथ आ रहे हैं आचार्य।

विनय : तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि वे राजकीय ही हैं।

विद्यार्थी : रथों के अग्रभाग पर झण्डे उड़ते हुए जो दिखाई दे रहे हैं!

[ऋषि पुण्डरीक को जैसे किसी बात का स्मरण हो आता है। वह अपने विद्यार्थियो से कहते हैं।]

पुण्डरीक : चलो, आज अब और पढ़ाई नहीं होगी। मैं इन राजकीय अतिथियों का स्वागत करूँगा।

[क्रमशः दो सुन्दर रथ उस बकुल कुंज के निकट आकर खड़े हो जाते हैं और उन पर से राजकुमार यशोवर्मा, सेनापति श्रीदेव और कुमार जनार्दन उतरते हैं। सभी लोग आगे बढ़कर ऋषि पुण्डरीक को प्रणाम करते हैं और पुण्डरीक उनका स्वागत करते हैं।]

पुण्डरीक : तुम अपनी यात्रा से कब लौटे युवराज ?

यशोवर्मा : कल प्रातःकाल, गुरुदेव !

पुण्डरीक : किस-किस द्वीप पर काम्बोज का पंचरंगा झंडा तुम स्थापित कर आए हो ?

जनार्दन : सभी विजित द्वीपों पर यशोवर्मा काम्बोज के पंचरंगे

झंडे की बजाय आपका लाल झण्डा ही स्थापित कर रहे हैं आचार्य !

पुण्डरीक : यह लाल झंडा मेरा नहीं है जनार्दन ! वह मेरे महान् देश का भी नहीं है । वह तो मनुष्यत्व का, शान्ति का और भ्रातृभाव का झण्डा है । आर्यत्व की इस पताका का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि उसे किसी देश पर ज़बरदस्ती नहीं फहराना चाहिए । इस पताका का आधार तो हृदय की विजय है । मालूम नहीं यशोवर्मा कि तुम आर्य संस्कृति का प्रसार किस ढंग पर कर रहे हो ।

यशोवर्मा : मेरी अब तक की सम्पूर्ण विजय शस्त्र के बल पर ही हुई है, इस बात से मैं इन्कार नहीं कर सकता गुरुदेव। परन्तु क्या आप इस बात को स्वीकार नहीं करते कि हम लोगों का असंस्कृत मस्तिष्क और नया रुधिर सहनशीलता जानता ही नहीं । हम लोग यदि प्रेम-विजय को अपना लक्ष्य बना लें, तो शायद पत्थर के समान निश्चेष्ट हो जाएँ ।

पुण्डरीक : मैं यह सब समझता हूँ युवराज ! इसी से तो मैं सभी कुछ सहन भी कर लेता हूँ। परन्तु यदि तुम एक साम्राज्य-विजयी के स्थान पर मानव-हृदय-विजयी सम्राट् बन सकते !

[क्षण भर तक चुप रहकर पुण्डरीक पूछते हैं]

तुम किन द्वीपों की विजय कर आए हो ?

यशोवर्मा : दक्षिण समुद्र के नौ द्वीपों पर अब आर्य पताका

फहरा रही है। उत्तर समुद्र के पांच द्वीप हम लोगों की अधीनता स्वीकार कर चुके हैं, उस ओर केवल वे द्वीप ही बाकी हैं, जिन पर चम्पा का अधिकार है। इसी सम्बन्ध में आपका आशीर्वाद लेने के लिए हम लोग आज आपकी सेवा में आए थे।

पुण्डरीक : क्यों, क्या बहुत शीघ्र पुनः विजय के कार्य के लिए वापस लौट जाने की सलाह है?

यशोवर्मा : जी हां भगवन्! महाराज की अनुमति प्राप्त कर हम लोग केवल दो सप्ताह ही में अपना सैन्य संग्रह कर वापस लौट जाना चाहते हैं। हमारे सम्पूर्ण जहाज़ों की देखभाल और मरम्मत कल ही से शुरू हो गई है। अब के एक बड़ी महत्वाकांक्षा हम लोगों के हृदय में है।

पुण्डरीक : वह कौन-सी महत्वाकांक्षा ?

यशोवर्मा : (ज़रा धीमी आवाज़ में) चम्पा के साम्राज्य की विजय।

पुण्डरीक : (क्षण भर चुप रहने के बाद गम्भीर स्वर में) मेरी यह दृढ़ सम्मति है कि यह इच्छा तुम अपने जी से निकाल दो।

यशोवर्मा : यह क्यों गुरुदेव ?

पुण्डरीक : मुझे विश्वास है, कि यदि प्रयत्न किया जाए तो काम्बोज और चम्पा में इतनी घनिष्ट मित्रता का भाव पैदा हो सकता है कि दोनों राष्ट्रों की सम्मिलित शक्ति विश्व भर के लिए चरचा का विषय बन जाए। मेरे

जीवन का और स्वप्न ही क्या है युवराज ? तुम व्यर्थ का रुधिरपात कर मेरे भावी सुखस्वप्न की इतिश्री न कर दो यशोवर्मा !

जनार्दन : और मैं तुम से क्या कहता था राजकुमार ?

पुण्डरीक : तुम पर मुझे भरोसा है जनार्दन । तुम मेरी सहायता करो । तुम्हारी क्या राय है सेनापति ?

श्रीदेव : मेरा अपना पृथक् व्यक्तित्व ही नहीं है गुरुदेव ! युवराज का मस्तिष्क ही मेरा मस्तिष्क है । युवराज की राय ही मेरी राय है ।

पुण्डरीक : तुम अपने इरादे पर पुनर्विचार नहीं कर सकते यशोवर्मा ?

यशोवर्मा : आपकी आज्ञा से मैं सभी कुछ कर सकता हूँ आचार्य ! पुनर्विचार की तो बात ही क्या है ।

पुण्डरीक : याद है, प्रथम वसन्तोत्सव के दिन, जब पहले-पहल तुमने मेरा शिष्यत्व स्वीकार किया था, मैंने तुमसे क्या कहा था ? मैंने कहा था न कि मैं तुम्हें आज्ञा कभी नहीं दूँगा । मैं सचमुच कभी तुम्हें आज्ञा नहीं दूँगा । आज भी नहीं । भविष्य में भी कभी नहीं ।

[यशोवर्मा सिर झुकाए चुपचाप खड़े रहते हैं ।]

आज्ञा देने का अभिप्राय है कि तुम्हारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को मैं कुण्ठित बना दूँ । मैं इसे व्यक्तित्व की हत्या गिनता हूँ । इसी बात पर तो मेरा अपने अभिन्न मित्र से भारी मतभेद था ।

यशोवर्मा : अपने किस अभिन्न मित्र से ?

पुण्डरीक : यह तुम्हारे जन्म से बहुत पहले की बात है, युवराज। मुझे तो सन्देह है कि तब तक तुम्हारे पिता जी का भी जन्म हुआ था या नहीं। उन्हीं दिनों मैं अपने से बड़ी आयु के एक आदरणीय मित्र के साथ इन दीपों में आया था। हम दोनों राह में, कुमारी द्वीप में कुछ दिनों के लिए ठहरे थे। मेरे वह मित्र मुझसे न केवल आयु में, अपितु हर एक बात में बड़े थे। मैं एक तरह से उन्हीं के भरोसे पर इस ओर आया था। एक दिन वह अकेले ही एक छोटी-सी नाव पर समुद्र में सैर के लिए चले गए और उसके बाद वह लौटकर नहीं आए। मैंने बरसों तक उन्हें खोजने की कोशिश की। इस ओर के सभी द्वीप छान मारे, परन्तु कहीं उनका कुछ भी पता नहीं चला। तुम्हारी इस बात से आज सहसा मुझे उनकी याद हो आई है। अनेक महत्वपूर्ण बातों के सम्बन्ध में उनमें और मुझ में मौलिक मतभेद था। वह जीवित होते तो तुम मेरे शिष्य कदापि न बनकर उन्हीं के शिष्य बनते। उनकी इच्छा थी कि शस्त्र और आज्ञा के बल पर संसार के इस भाग में एक शक्तिशाली साम्राज्य का निर्माण किया जाए।

यशोवर्मा : यह मेरा दुर्भाग्य है कि वह आज जीवित नहीं हैं।

पुण्डरीक : (एक ठंडी सांस लेकर) साठ साल पुरानी उस बात

को अब याद करने से भी क्या लाभ। चलो, जाने दो। हां युवराज, मैं तुम्हें आज्ञा कभी नहीं दूँगा। परन्तु मेरी राय तो स्पष्ट है।

यशोवर्मा : मैं आपकी राय पर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक विचार करूँगा, परन्तु यदि तब भी मैं चम्पा पर आक्रमण करने का ही निश्चय करूँ, तब तो आपका आशीर्वाद मेरे साथ है न ?

पुण्डरीक : मेरी हार्दिक सदभिलाशाएं सदा तुम्हारे साथ हैं। अच्छा, सदा की तरह आज रात भी तुम मेरे ही यहां ठहरोगे न ?

यशोवर्मा : अवश्य गुरुदेव।

पुण्डरीक : (ऊँचे स्वर से) विनय ! विनय ! (यशोवर्मा आदि से) आप लोग चलकर मुँह-हाथ धो लीजिए।

दृश्य २

देश—*आशाद्वीप*
स्थान—*समुद्र के निकट राजमहलों की ऊंची छत*
समय—*सूर्यास्त*

[छत पर राजकुमारी रेवा अकेली बैठी है। सामने विस्तृत समुद्र है। सीमारहित। अनन्त। समुद्र के शान्त, उजले और झिलमिल कर रहे वक्षस्थल की ओट में सूर्यास्त हो रहा है। दाहिनी ओर कुछ

दूरी पर, समुद्र में पहाड़ी पर स्थित शिवमन्दिर का कलश दिखलाई पड़ रहा है। इस कलश से कुछ ही ऊँचाई पर बहुत से सामुद्रिक पक्षी उड़ रहे हैं। रेवा तन्मय-सी होकर समुद्र की ओर देख रही है।]

रेवा : (आप ही आप) वह सामने सूर्यास्त हो रहा है। सदा के समान अत्यन्त सुहावना। प्रतिदिन जैसे परवश-सी होकर मैं यहाँ आ बैठी हूँ और जब तक नज़र काम देती है, समुद्र की ओर देखती रहती हूँ। परन्तु मेरी वह चिर-प्रतीक्षा कभी पूरी नहीं हुई। उस दिन गुरुदेव ने कहा था, बड़े-बड़े पालों और ऊँचे-ऊँचे मस्तूलों वाला एक जहाज़ आशाद्वीप के किनारे दिखाई देगा और उस पर सवार होकर एक राजकुमार इस द्वीप में आएगा। तुम उसकी प्रतीक्षा करना और उसी दिन से मैं उस जहाज़ की प्रतीक्षा कर रही हूँ। बाबा ने कहा था कि विश्व भर में वही एक व्यक्ति तुम्हारा दूल्हा बनने के योग्य है। परन्तु वह राजकुमार नहीं आया! इस बीच में मेरी मां परलोक सिधार गई। आशाद्वीप की सम्पूर्ण प्रजा आज मुझे अपनी मां कहकर पुकारती है। वह मुझसे कुछ आशा रखती है। द्वीप के विशिष्ठ वंशों के कुमार किसी विशेष चाह के साथ राज-महलों में आते हैं। मेरे हृदय की थाह पाने का वे सब व्यर्थ प्रयत्न करते हैं। मैं स्वयं भी अपने हृदय को समझ नहीं पाती।

[रेवा की तीन सखियों का प्रवेश]

१ सखी : मैंने कहा था न कि महारानी इसी जगह होंगी।

२ सखी : इसमें कहने की बात ही क्या थी। यह बात तो सारा राजमहल जानता है कि इस समय महारानी महल की छत पर, ठीक इसी जगह रहती हैं।

३ सखी : सम्पूर्ण राजमहल क्या, सम्पूर्ण आशाद्वीप जानता है कि महारानी के जीवन का सबसे बड़ा चाव महलों की छत पर बैठकर सूर्यास्त का दृश्य देखना है।

१ सखी : पूजा के लिए नहीं चलेंगी महारानी ? आज चतुर्दशी पूजा है।

रेवा : अभी ज़रा ठहरकर पूजा की जाएगी। सूर्यास्त हो लेने दो; पृथ्वी को अन्धकार की काली चादर से ढक जाने दो।

२ सखी : प्रतिदिन इसी तरह अकेले आकर यहां बैठे रहने में तुम्हें क्या आनन्द आता है राजकुमारी ?

रेवा : तुम्हीं बतलाओ, यह सामने का दृश्य क्या इतना सुहावना नहीं, जो तुम्हारे हृदय के सम्पूर्ण ध्यान को अपनी ओर खींच सके ?

३ सखी : सुहावना तो यह अवश्य है, परन्तु क्या सिर्फ़ यही दृश्य देखने के उद्देश्य से तुम यहां आकर बैठती हो सखी ? मैं तुम से उम्र में बड़ी हूँ। मैं अभी तक कुछ भी समझ तो नहीं पाई, परन्तु समझना ज़रूर चाहती हूँ।

रेवा : तुम क्या चीज़ समझना चाहती हो ?

३ सखी : यही ! तुम्हारे जी का भाव।

रेवा : मेरे जी का कौन-सा भाव ?

३ सखी : अच्छा बताओ शिवमन्दिर के कलश पर तुमने सारी रात प्रकाश रखने का प्रबन्ध क्यों किया है ?

रेवा : इसी कारण कि कोई नाव राह न भटक जाए ।

३ सखी : और इधर तुम इतनी गम्भीर क्यों बनी रहती हो ?

२ सखी : उस दिन की बात याद है महारानी, जब आंधी-पानी वाली एक सांझ को इसी जगह बैठे-बैठे बहुत दूर पर तुम्हें पाल वाली कोई नाव दिखाई दी थी ? तुम कितनी उत्कण्ठा और उत्साह से उसी समय समुद्र-तट पर जा पहुँची थीं और यह देखकर तुम्हारे मुँह पर कितनी निराशा अंकित हो गई थी कि उस नाव में आशाद्वीप के एक बूढ़े मछियारे के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था । अन्तर इतना ही था कि उस मछियारे की नाव आशाद्वीप की नावों से भिन्न आकृति की थी । तुम्हें देख कर वह मछियारा कितना घबरा गया था ।

[सब सखियाँ मुसकराने लगती हैं ।]

रेवा : अच्छा बहनो, क्या तुम मुझे बता सकती हो कि आशाद्वीप का कोई नागरिक आज तक कभी विदेश गया है ?

१ सखी : ऐसा कोई उदाहरण याद तो नहीं पड़ता ।

२ सखी : और कभी कोई बाहर का व्यक्ति भी तो हम लोगों की होश में आज तक कभी आशाद्वीप में नहीं पहुँचा ।

३ सखी : बचपन में अपनी नानी से मैंने बाहर के लोगों की

बहुत-सी कहानियाँ सुनी हैं। मगर बाहर के लोग कभी हम लोगों के लिए अभिनन्दनीय तो नहीं हो सकते।

रेवा : वह क्यों ?

३ सखी : वह इसलिए कि आचार-विचार की दृष्टि से वे हम लोगों की अपेक्षा क्षुद्र हैं। वे आपस में लड़ते-भिड़ते हैं और सुना है कि एक दूसरे की हत्या तक भी कर डालते हैं।

२ सखी : सचमुच ?

३ सखी : हत्या ही क्या, नानी सुनाया करती थी कि वे लोग कभी-कभी सैकड़ों-हज़ारों की संख्या में आमने-सामने जमा हो जाते हैं और तब एक विशेष समय पर बिगुल बजाया जाता है। बिगुल बजते ही आमने-सामने के लोग एक-दूसरे पर चोटें करने लगते हैं। बड़ा भयानक दृश्य हो जाता है। लोहे को नोकीला और तेज़ बनाकर वे एक दूसरे पर फेंकते हैं। किसी का हाथ कटता है तो किसी की टाँग। सैकड़ों मनुष्य देखते ही देखते मर जाते हैं। खून की नदियाँ बह निकलती हैं। चारों तरफ़ से कराहने और चिल्लाने की आवाजें आने लगती हैं, फिर भी वे यह भयंकर हत्याकाँड बन्द नहीं करते। लड़ते ही चले जाते हैं! लड़ते ही चले जाते हैं!! भला ऐसे लोग भी कभी अच्छे हो सकते हैं ?

१ सखी : ओह, यहाँ तक !

२ सखी : मैं तो डर गई बहन।

रेवा : मगर मैं नही डरी। मैं दुनिया देखना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ कि मेरे पंख निकल आएँ और मैं पक्षी बनकर समुद्र के विशाल वक्ष पर उड़ती चली जाऊँ। द्वीप-द्वीपान्तरों को लाँघती चली जाऊँ। और उड़ते-उड़ते वहाँ जा पहुँचूँ, जहां बड़े-बड़े पालों वाले और ऊँचे-ऊँचे मस्तूलों वाले विशाल जहाज़ हैं।

३ सखी : तुम्हारी यही बातें तो समझ में नहीं आतीं राज-कुमारी !

[इसी समय राजमहलों के मन्दिर से पूजा के घण्टे की आवाज़ सुनाई देती है। सूर्यास्त हो चुका है। आकाश में तारे निकल आए हैं। निकट के समुद्र में प्रकाश का हल्का-सा प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा है, जो सुदूर क्षितिज के गहन अन्ध-कार के सम्मुख अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होता है। इस प्रतिबिम्ब के साथ समुद्र के बीच शिवमन्दिर के शिखर पर उग्रता से चमकता हुआ अकेला दीपक सम्पूर्ण अंध-कार को चुनौती-सी देता हुआ प्रतीत होता है।]

रेवा : चलो बहनो, पूजा के लिए चलें।

सखियां : चलो।

[प्रस्थान]

दृश्य ३

देश—*चम्पा*
स्थान—*युद्धभूमि में श्रीदेव का शिविर*
समय—*मध्यान्होत्तर*

[सेनापति श्रीदेव बहुत ही उद्विग्न भाव से अपने शिविर के सम्मुख टहल रहे हैं। उनके वस्त्रों पर खून लगा हुआ है। बाईं भुजा के ऊपर तलवार का निशान साफ़ देख पड़ता है, जहाँ वस्त्र कट गए हैं और बहुत-सा खून निकलकर कपड़ों पर जम गया है। कमर में म्यान लटक रही है और पीठ पर ढाल। एक खुली तलवार उनके दाहिने हाथ में है। प्रतीत होता है कि उन्हें युद्धक्षेत्र से वापस आए अधिक समय नहीं हुआ। उनके सिर पर शिरस्त्राण है और पैरों में मोटी-मोटी चट्टियां। दो-एक जर्राह उनके घाव की चिकित्सा करने की इच्छा से निकट ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। परन्तु सेनापति से कुछ भी कहने का जैसे उन्हें साहस नहीं होता। टहलते-टहलते सहसा वह आवाज़ देते हैं।]

सेनापति : द्वारपाल !

द्वारपाल : (निकट आकर) हज़ूर !

सेनापति : सुचेत अभी आया या नहीं ?

द्वारपाल : नहीं श्रीमन्। वह अभी युवराज के शिविर से वापस नहीं आया।

सेनापति : इतनी देर ! (सहसा उनकी निगाह दोनों जर्राहों पर पड़ती है। वह खिज उठते हैं।) तुम लोग यहां क्या कर रहे हो ?

जर्राह : श्रीमन्, आपके मन्त्री महोदय ने हमें यहाँ पहुँचने की आज्ञा दी थी।

सेनापति : किस लिए ?

जर्राह : आपके घाव की चिकित्सा के लिए ।

सेनाहति : (झुँझलाकर) उँह, वह कुछ नहीं । जाओ, यहां से !

[दोनों जर्राह चलने लगते हैं ।]

सेनापति : अच्छा, बहुत शीघ्रता करो । इस जगह पट्टी बांध दो ।

[वह अपनी बाईं भुजा उस ओर बढ़ा देते हैं । दोनो जर्राह आगे बढ़कर उनके घाव को धोने लगते हैं । इसी समय जनार्दन का प्रवेश ।]

जनार्दन : यह क्या सेनापति ! युवराज यहाँ नहीं हैं क्या ?

[चौंककर सेनापति अपना हाथ वापस खीच लेते हैं ।]

सेनापति : वह यहां नही हैं । शायद अपने शिविर में होंगे । मैने अभी उनके पास अपने शरीर-रक्षक को भेजा है ।

[इसी समय उनकी निगाह सुचेत पर पड़ती है,
जो जनार्दन के पीछे वहाँ पहुँचा था ।
सेनापति तडपकर सुचेत से
पूछते हैं]

सेनापति : तुम युवराज का समाचार क्यों नहीं देते सुचेत ?

जनार्दन : नहीं सेनापति, युवराज अपने शिविर में नहीं हैं । मैं सीधा उन्हीं के शिविर से आ रहा हूँ । कल प्रात.काल आप दोनों एक ही साथ तो युद्धक्षेत्र में गए थे । मेरा ख्याल था कि युवराज कहीं इधर ही रुक गए होंगे । युवराज आखिर हैं कहां ?

सेनापति : युवराज अपने शिविर में नहीं पहुँचे ? (चेहरा पीला पड़ जाता है ।)

जनार्दन : वहां तो वह नहीं पहुँचे । सैन्य शिविर में उन्हें देखा आपने ? यह क्या, आपकी बांह से यह खून कैसे बह रहा है ?

सेनापति : (उद्विग्नता से) यह सब कुछ नहीं । पहले मुझे यह बताओ कि युवराज कहां हैं ?

जनार्दन : मैं स्वयं यही बात पूछने के लिए तो यहां आया था।

सेनापति : ओह, तुम नहीं जानते जनार्दन कि यह कितनी भयानक बात है । युवराज अवश्य ही कहीं मुसीबत में फंस गए ! मेरा घोड़ा लाओ ! (एकाएक आगे बढ़कर जाना चाहते हैं ।)

जनार्दन : घबराओ नहीं सेनापति । युवराज पर मुसीबत आना मामूली बात नहीं है । वह अवश्य सकुशल होंगे । तुम बताओ तो सही कि तुमने उन्हें कहां छोड़ा ? तुम दोनों कल एक ही साथ तो यहां से रवाना हुए थे ।

सेनापति : (बड़ी शीघ्रता से) सामने का दुर्गम पर्वत तुम देख रहे हो न जनार्दन ? यहां तक हम लोगों ने शत्रु-सेना को बहुत आसानी से खदेड़ दिया । इसके बाद हम लोग पहाड़ की तराई में से होकर आगे बढ़ने लगे । अधिकांश शत्रु-सेना हमारे भय से आगे-आगे भागती चली जा रही थी । राह में एक अत्यन्त दुर्गम पहाड़ी नाला है, इस पर लकड़ी

का एक पुल है । जब शत्रुओं की सम्पूर्ण सेना आगे बढ़ गई, तो हम लोग भी इसी पुल पर से होकर नाला पार करने लगे । मैं आगे-आगे था और युवराज हमारी सेना के अन्त में । हमारी अधिकांश सेना जब वह नाला पार कर चुकी, तो वह पुल अचानक भभक कर जल उठा । वह जला किस तरह, यह तो कुछ समझ न आया, परन्तु यह निश्चय है कि यह शत्रुओं का कार्य रहा होगा । हम सब लोग आगे बढ़ गए थे और युवराज थोड़ी-सी सेना के साथ पीछे रह गए थे । उस गहरी खाई को पारकर सकना असम्भव कार्य था । हम दोनों ने यही सोचा कि चिन्ता की कोई बात नहीं । मेरे पास काफ़ी सेना थी और युवराज की तरफ़ शत्रु सेना थी ही नहीं । कम से कम हम लोगों ने तब तक यही समझा था । सांझ हो गई थी, परन्तु हम लोग शत्रुओं के पीछे-पीछे बढ़ते चले गए । सारी रात हम लोगों ने बड़ी सतर्कता के साथ काटी । आज प्रातःकाल शत्रु सेना से हम लोगों का घनघोर युद्ध हुआ । उसमें विजय प्राप्त कर करीब ४० मील का चक्कर काटकर हम लोग यहां पहुँचे हैं । मुझे विश्वास था कि युवराज कल ही यहां वापस आ गए होंगे ।

जनार्दन : वह लौटे तो नहीं । फिर भी चिन्ता की कोई बात नहीं है । युवराज कहीं शत्रुओं से मुठभेड़ ले रहे होंगे ।

सेनापति : मेरा हृदय यह गवाही नहीं देता जनार्दन। मुझे

अब यह सन्देह होने लगा है कि इस सब में अवश्य ही शत्रुओं की कोई गहरी चाल रही होगी। चलो, हम लोग युवराज की सहायता को चलें।

जनार्दन : शिविर की रक्षा का उचित प्रबन्ध कर हमें अवश्य ही युवराज की सहायता के लिए जाना चाहिए। कुछ सेना लेकर तुम उत्तर दिशा में जाओ, मैं दक्षिण की ओर जाऊंगा।

[सेनापति तुरही बजाते हैं और सभी अश्वारोही सैनिक एकत्र होने लगते हैं।]

दृश्यान्तर (१)

स्थान—*युद्धक्षेत्र से ५० मील दूर एक नदी का किनारा*

समय—*मध्यान्होत्तर*

[युवराज यशोवर्मा एक घोड़े पर सवार हैं। अकेले। उनके सम्मुख चम्पा के तीन-चार सैनिकों की लाशें पड़ी हैं। युवराज के चेहरे पर गहरी थकावट और चिन्ता के चिन्ह स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं।]

युवराज : शत्रुओं ने खूब दूर की सोची। अगर मेरा यह घोड़ा असाधारण सामर्थ्य वाला न होता, तो मैं आज कभी जीवित नहीं बच सकता था। ओह, किस तरह बिजली

की तेज़ी से यह घोड़ा मैदान से दौड़ा ! मेरे वीर साथियों ने भी किस तरह उस विशाल शत्रु-सेना का सामना किया। दो-चार शत्रुओं को छोड़कर कोई जान ही न सका कि मैं किस ओर को निकल आया। और वे दो-चार शत्रु भी अब किसी को मेरी खोज-खबर देने के लिए जीवित नहीं रहे।

मैं युद्धक्षेत्र से भाग आया हूँ। क्या मैंने यह अच्छा किया ? हां, अवश्य ही मैंने बहुत अच्छा किया। मैं वहाँ अपना जीवन अवश्य दे सकता था, परन्तु विजय-लाभ नहीं कर सकता था। और मेरे विजय लाभ न कर सकने का अभिप्राय था कि काम्बोज के आर्य साम्राज्य का स्वप्न धूल में मिल जाता। मैंने बहुत अच्छा किया जो युद्धक्षेत्र से भाग आया। परन्तु भारतवर्ष के ये आर्य ? ऋषि पुण्डरीक का कहना था कि भारतवर्ष के क्षत्रिय रणभूमि से भागने को सबसे बड़ी कायरता मानते हैं। परन्तु मैं वैसा क्यों मानूँ ? मैंने ऋषि पुण्डरीक की यह सलाह भी नहीं मानी कि मैं चम्पा पर आक्रमण न करूँ। ऋषि पुण्डरीक उस दिन कुछ खिन्न-से प्रतीत होते थे। उन्होंने यह भी कहा था कि साधना के लिए, अपनी आत्मिक शक्ति बढ़ाने के लिए वह पुनः अपने देश को लौट जाना चाहते हैं। इसी कारण न, कि मैं उनकी राय से सहमत नहीं हुआ ! मेरी आज की यह पराजय कहीं उसी बात का परिणाम तो नहीं ?

ये चम्पा के सैनिक सचमुच वीर हैं। वीर से भी बढ़कर ये लोग निपुण हैं। पर कल वह पुल एकाएक जल किस तरह उठा! कुछ समझ में नहीं आया। आग लगाने का इस तरह का अव्यर्थ उपाय यदि मैं भी जान पाता! यह तो एक चमत्कार था!

ओह, कितनी थकावट अनुभव हो रही है। चलूँ, चल कर नदी के जल से मुँह-हाथ तो धो लूँ। उसके बाद अपने शिविर की ओर जाने का प्रयत्न करूँगा। मुझे तो दिशा तक का भी ज्ञान नहीं रहा, शिविर की राह खोज लेना तो दूर की बात है!

[घोड़े से उतरकर युवराज नदी की ओर बढ़ते हैं।]

दृश्यान्तर (२)

स्थान—*यशोवर्मा के सैन्य शिविर के निकट का मैदान*

समय—*सन्ध्या*

[युवराज यशोवर्मा के शिविर का एक भाग भस्मसात हो चुका है। अभी तक वहाँ आग की चिंगारियाँ सुलग रही हैं। कपड़ों के जलने से तेज़ दुर्गन्ध और गहरा धुआँ सभी ओर व्याप्त है। दग्ध और अर्ध-दग्ध पदार्थों की एक विचित्र-सी दुर्गन्ध इस मैदान से आ रही है। मैदान में सेनापति श्रीदेव, कुमार जनार्दन और सभी सैनिक एकत्र हैं। सेनापति एक रक्षक से जवाब तलब कर रहे हैं।]

सेनापति : मैं पूछता हूँ, आखिर वह थी क्या चीज़ ?

रक्षक : मै किस तरह बताऊँ श्रीमन्। मुझे स्वयं कुछ भी समझ नहीं आया।

सेनापति : तुम अन्धे थे क्या ? तुम स्वयं तो कहते हो कि उस आदमी ने बड़ी शीघ्रता से शिविर के एक भाग पर बहुत-सा बुरादा-सा छिड़क दिया। वह बुरादा-सा कैसा था ?

रक्षक : कुछ मटियाली-मटियाली-सी चीज़ थी। हम लोगों ने तो समझा कि वह चम्पावासी अवश्य ही पागल है, जो पिसी हुई मिट्टी फेंककर हमारे शिविर पर जादू-टोना करने का प्रयत्न कर रहा है।

सेनापति : उसके बाद ?

रक्षक : उसके बाद हम लोगों ने उसे कैद कर लिया और उसके हाथ-पांव कसकर बांध दिए।

सेनापति : तब ?

रक्षक : एकाएक वह सम्पूर्ण शिविर धधककर जल उठा। हम लोगों ने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वह आग बुझाए न बुझी। आग इतनी सहसा धधकी जैसे अचानक कोई ज्वालामुखी फूट पड़ा हो। कुछ भी समझ में न आया श्रीमन्।

सेनापति : मैं सभी कुछ समझ गया। वह चम्पावासी कहां है ?

रक्षक : मौका पाकर वह अपने बन्धन खोलकर भाग गया। उस अग्निकाण्ड से हम लोग इतने स्तब्ध और भयभीत होगए थे कि हमारे दिमाग ने काम ही नहीं किया।

सेनापति : हट जाओ मेरे सामने से ! कापुरुष !

[जनार्दन से]

उधर युवराज का भी कोई समाचार नहीं मिला। मालूम नहीं, वह किस दशा में और किस स्थान पर हैं।

जनार्दन : हम लोग पराजित हो गए सेनापति ! चम्पावासियों ने अग्नि को अपने वश में किया हुआ है। हम लोग उनका मुकाबला किस तरह कर सकते हैं ?

सेनापति : सबसे पहले तो हमें युवराज का पता ठिकाना मालूम करना चाहिए ।

जनार्दन : युवराज का पता ? युवराज अमर है सेनापति ! उन्हें परमात्मा का वर प्राप्त है। उनकी हत्या कोई नहीं कर सकता। ऋषि पुण्डरीक ने उनका हाथ देखकर बताया था कि उनकी आयु बहुत लम्बी है ।

सेनापति : पर आखिर उन्हें खोजा किस जगह जाए ?

जनार्दन : देखो भाई श्रीदेव ! युवराज की चिन्ता में हमें अपने कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान नहीं भुला देना चाहिए। जो लोग हमारे शिविरों में आग लगा सकते हैं, वे लोग हमारी नौ-सेना को भी सहज ही में भस्मसात् कर सकते हैं। तुम सम्पूर्ण सेना समेत इसी समय समुद्रतट की ओर प्रस्थान कर दो। इधर मैं स्वयं युवराज-शरीर-रक्षक सेना के साथ उनका पता लगाने जाता हूँ।

सेनापति : उँह ! (कहकर उदास भाव से खड़े रह जाते है।)

जनार्दन : युवराज की आज्ञा याद है न ? उनकी अनुपस्थिति में मेरी आज्ञा सम्पूर्ण काम्बोज सेना के लिए मान्य है।

जाओ ! विलम्ब नहीं होना चाहिए। हम लोगों की प्रतीक्षा किए बिना तुम सम्पूर्ण बेड़े को काम्बोज की ओर रवाना कर देना ! काम्बोज के बेड़े की रक्षा देश की रक्षा के समान महत्वपूर्ण है।

सेनापति : जो आज्ञा !

[सेनापति श्रीदेव उदास भाव से सेना को बचा हुआ शेष शिविर उखाड़ने की आज्ञा देते हैं। शिविर समेटा जाने लगता है।]

दृश्य ४

देश—*चम्पा और भारतवर्ष के मार्ग में स्थित कुमीरी द्वीप नाम का एक समृद्ध द्वीप*

स्थान—*शिव मन्दिर*

समय—*रात*

[शिव मन्दिर में अभी-अभी आरती हुई है और उसके बाद पुजारी महोदय सभी लोगों को टीका लगाकर प्रसाद वितरण कर रहे हैं। पूजकों की इस भीड़ में सभी देशों और सभी जातियों के लोग दिखाई देते हैं। महिलाएँ और बालक भी इस भीड़ में हैं। अत्यन्त समृद्ध नागरिकों की पोशाक पहने और सिर पर रत्न-जटित सुनहरी पगड़ी बांधे मकरन्द भी पूजकों की इस भीड़ में शामिल है। वह सभी लोगों को बड़े ध्यान के साथ देख रहा है। क्रमशः प्रसाद का वितरण समाप्त हो

जाता है और उसके बाद एक महिला अत्यन्त भक्ति भाव से गाने लगती है।

गीत

अब तो केवल आशा तेरी !

टूटी-फूटी नौका स्वामी, पड़ी भंवर में मेरी।
उमड़-घुमड़कर बादल गरजें, आंधी चले घनेरी।
उठें भयंकर चपल तरंगें, ऊपर निशा अंधेरी।
सूझे आर न पार चहूं दिश, डोलत नैया मेरी।
हा, तिस पर मतवाला नाविक, मैं चिन्ताओं घेरी
विह्वल होकर नाथ पुकारूँ, क्यों की अब लग देरी।

अब तो केवल आशा तेरी !

[गीत समाप्त होते ही मन्दिर में घंटियाँ बजने लगती हैं, और लोग क्रमशः मन्दिर से चलने लगते हैं। मन्दिर के बाहर अंधकार है, परन्तु भीतर उल्काओं का तीव्र प्रकाश है। मकरन्द अपनी जगह उठकर खड़ा हो जाता है, और सब लोग 'सेठ जी, प्रणाम !' कहकर उससे विदा मांगते जाते हैं। इसी समय मकरन्द को पुजारी महोदय पुकारते हैं।]

पुजारी : सेठ जी, ज़रा आप भी तो प्रसाद लेते जाइए न !

मकरन्द : अभी आया पुजारी जी !

[मकरन्द आगे बढ़ता है और उसी समय जीर्ण-शीर्ण वस्त्र पहने हुए एक विदेशी सहसा मकरन्द की पगड़ी पर जटित रत्नों के लालच से उस पर आक्रमण कर देता है। मकरन्द उसे पकड़ने का प्रयत्न करता है, परन्तु वह पकड़ में नहीं आता। भीड़ मे खलबली मच जाती है और वह

गीतकार : पुरुषार्थवती

विदेशी दौड़कर निकल जाना चाहता है। जब वह दरवाज़े के निकट पहुँचता है, तो एक अत्यन्त बलिष्ठ और रोबीली सूरत का विदेशी युवक उसे पकड़ लेता है। बहुत शीघ्र मन्दिर में शान्ति और व्यवस्था स्थापित हो जाती है। रत्न मकरन्द को वापस कर दिए जाते है और मन्दिर के रक्षक उस चोर को पकड़कर बाहर ले जाते हैं। लोग टीका-टिप्पणी करने लगते हैं।]

एक आदमी : कुमारी द्वीप में ऐसी अनहोनी बातें कब से होने लगीं ?

दूसरा आदमी : दिनोंदिन कुमारी द्वीप में विदेशियों की संख्या भी तो बढ़ती चली जा रही है।

तीसरा आदमी : परन्तु यह तो सरासर अन्धेर है !

चौथा आदमी : शिव मन्दिर में ऐसा अनाचार ! शिवशंकर ! शिवशंकर !

पांचवां आदमी : परन्तु हमारे इस कुमारी द्वीप की समृद्धता और महत्ता भी तो इन्हीं विदेशी व्यापारियों पर अवलम्बित है।

पहला आदमी : भला वह भी कोई व्यापारी था ? वह तो साफ़ उचक्का था।

तीसरा आदमी : तुमने उसके कपड़े नहीं देखे ? उसकी सूरत नहीं देखी ?

पांचवां आदमी : परन्तु केवल कपड़ों ही के कारण किसी को मन्दिर में आने से तो रोका नहीं जा सकता।

पहला आदमी : परन्तु वह था कौन ?

चौथा आदमी : हां, वह था कौन ?

दूसरा आदमी : मेरा ख्याल है, वह कृष्ण, समुद्र के निकट का कोई व्यक्ति था ।

तीसरा आदमी : ओह, अपने देश से हज़ारों मील दूर आकर भी इस तरह की काली करतूतें !

पांचवाँ आदमी : सेठ जी, आपको चोट तो नहीं पहुँची ?

मकरन्द : (मुस्कराकर) जी नहीं, मुझे बड़ा आनन्द आया !

[मकरन्द द्वार के निकट खड़े हुए उस बलिष्ठ विदेशी युवक के निकट जा पहुँचता है, जिसने चोर को पकड़ा था, और उससे कहता है ।]

मैं आपका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

वि० युवक : इस कृतज्ञता के लिए धन्यवाद । परन्तु मेरा ख्याल है कि वह कोई अत्यन्त दरिद्र और अभागा व्यक्ति है ।

मकरन्द : मेरा भी यही ख्याल है।

पहला आदमी : (विदेशी युवक से) आपका कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है ।

दूसरा आदमी : कितनी मज़बूती से आपने उसे पकड़ा था । हिल तक न सका । आप न होते तो बचकर साफ़ निकल गया होता ।

तीसरा आदमी : क्यों न हो, ऐसा बलिष्ठ युवक सम्पूर्ण कुमारीद्वीप में कोई दूसरा न होगा ।

मकरन्द : (विदेशी युवक से) मेरी राय है कि यदि ये रत्न नहीं

तो कम से कम दो-तीन स्वर्ण-मुद्राएं उस गरीब को अवश्य दे दूँ।

वि० युवक : मैं आपकी जगह होता तो अवश्य ऐसा ही करता।

मकरन्द : (पुजारी से) ज़रा उस व्यक्ति को यहाँ तो बुला दीजिए।

पुजारी : किस व्यक्ति को ?

मकरन्द : वही, जिसने मेरी पगड़ी पर आक्रमण किया था।

पुजारी : (आश्चर्य से) बहुत अच्छा।

(ज़रा ऊंची आवाज़ में) द्वारपाल !

द्वारपाल : श्रीमन् !

पुजारी : उस विदेशी चोर को यहाँ ले आओ !

[द्वारपाल 'जो आज्ञा' कहकर उसे भीतर ले आता है। उसके हाथ-पैर बँधे हुए हैं।]

मकरन्द : (द्वारपाल से) इसके बन्धन खोल दो।

[द्वारपाल बन्धन खोल देता है।]

मकरन्द : तुम्हें भोजन नहीं मिलता क्या ?

व्यक्ति : मिलता क्यों नहीं हजूर।

मकरन्द : फिर तुम इतने कमज़ोर क्यों हो ?

[वह व्यक्ति कोई जवाब नहीं देता।]

मकरन्द : तुम्हारे पास कुछ धन है ?

व्यक्ति : नहीं।

मकरन्द (तीन स्वर्ण मुद्राएं उसके हाथ में देकर) यह लो। इन्हें

संभालकर रक्खो। मेरी पगड़ी के रत्न सच्चे रत्न नहीं हैं! (मुस्कराता है।)

[वह व्यक्ति लज्जा से सिर झुकाए खड़ा रहता है।]

मकरन्द : तुम किस देश से आए हो?

व्यक्ति : खोतान से।

मकरन्द : तुम्हें अपने देश की प्रतिष्ठा का ख्याल भी नहीं है!

[उस व्यक्ति की आँखों में आँसू भर आते हैं।]

मकरन्द : अब रोते हो! बेवक़ूफ़ कहीं के। जितना कमज़ोर तुम्हारा शरीर है, उतना ही कमज़ोर तुम्हारा हृदय भी है। जाओ और अगर फिर कभी तुम्हें गरीबी बहुत अधिक सताए, तो मेरे पास आ जाना। मैं इस मन्दिर में प्रतिदिन आता हूँ।

[वह व्यक्ति धीरे-धीरे बाहर चला जाता है। सब लोग अवाक से खड़े रहकर यह सब देखते रहते हैं।]

मकरन्द : (विदेशी युवक से) मुझे ज़रा बोलने का खास शौक है श्रीमन्। मेरी बातों से आप तंग न आ जाइएगा। हाँ, मैं आपके प्रति विशेष रूप से अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करना चाहता हूं।

वि० युवक : क्या मै जान सकता हूँ कि आप की जन्मभूमि कहाँ है?

मकरन्द : भारतवर्ष।

(विदेशी युवक भक्तिभाव से सिर झुकाकर मकरन्द को प्रणाम करता है।)

मकरन्द : आप मुझे लज्जित न कीजिए, भाई साहब । मैं शायद उम्र में आपसे बड़ा नहीं हूँ ।

वि० युवक : मैं आपको आदर की दृष्टि से देखता हूँ । परन्तु यह प्रणाम मैंने आपको नहीं किया था । मेरा यह प्रणाम आपके द्वारा आपके महान् देश के प्रति था ।

मकरन्द : (ज़रा-सा मुस्कराकर) आप तो मुझे रुलाकर छोड़ेंगे !

[और सचमुच उसकी आँखों के कोर भीग आते है, परन्तु चेहरे पर वैसी ही प्रसन्न मुस्कराहट छाई रहती है ।]

मकरन्द : आप कहाँ रहते हैं ?

वि० युवक : मै और मेरे यह मित्र (अपने पीछे खड़े हुए एक युवक की ओर इशारा कर) कल ही कुमारी द्वीप में पहुँचे हैं। यहाँ हम लोग किसी को नहीं जानते, इससे इसी मन्दिर में ठहरे हैं ।

[भीड़ छँटती चली जा रही है और अब मन्दिर में बहुत कम व्यक्ति बच रहे हैं ।]

मकरन्द : (अत्यन्त विनयपूर्वक) मेरा यह बड़ा सौभाग्य होगा, यदि आप मेरा आतिथ्य स्वीकार कर सकें ।

वि० युवक : यह आपकी कृपा है । परन्तु हम लोगों को यहाँ भी कोई कष्ट नहीं है ।

मकरन्द : मेरी कृपा नहीं । यह सचमुच मेरा अहोभाग्य होगा ।

वि० युवक : धन्यवाद । क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूँ ?

मकरन्द : मैं कुमारी द्वीप का एक व्यापारी हूँ। भारतवर्ष से यहाँ तक मेरे अनेक जहाज़ आते-जाते हैं। यह तो आप जानते ही होंगे कि यह द्वीप विदेशी व्यापार का एक बहुत बड़ा केन्द्र है।

वि० युवक : आपसे मिलकर हम लोग अनुगृहीत हुए।

मकरन्द : मैं आपका नाम जान सकता हूँ?

वि० युवक : (ज़रा झिझक के साथ) और किसी को तो नहीं, परन्तु आपको मैं अपना नाम भी बता सकता हूँ। (ज़रा धीमी आवाज मे) यशोवर्मा!

मकरन्द : (अत्यन्त विस्मयाकुल होकर) कौन यशोवर्मा?

वि० युवक : काम्बोज के यशोवर्मा।

मकरन्द : काम्बोज साम्राज्य के जगत्प्रसिद्ध युवराज यशोवर्मा!

वि० युवक : जी, शायद जगत्प्रसिद्ध ही सही। और यह मेरे मित्र कुमार जनार्दन हैं।

मकरन्द : आप लोग मेरी तुच्छ-सी कुटिया को पवित्र करें युवराज! मुझे सभी कुछ मालूम है। आप मेरे साथ अवश्य चलने की कृपा करें।

[दोनों का हाथ पकड़कर बाहर ले जाता है।]

तीसरा अङ्क

दृश्य १

देश—*भारतवर्ष*

स्थान—*चोल राज्य का सुपत्तन बन्दरगाह । राजकीय विश्राम गृह*

समय—*मध्याह्नपूर्व*

[ऋषि पुण्डरीक बैठे हैं और राजकुमारी इन्दिरा और कुमार परान्तिक उनके सम्मुख खड़े हैं ।]

इन्दिरा : इस पर भी आपने उन्हें अग्निचूर्ण (बारूद) बनाना नहीं सिखलाया ?

पुण्डरीक : यह तुम क्या कहती हो, इन्दिरा ! मैं लोगों को हत्या के उपाय सिखाऊँगा !

इन्दिरा : परन्तु चम्पा के लोग भी तो हत्या के इस उपाय को जानते ही थे। आखिर कभी आप ही ने तो अपनी युवावस्था के दिनों में एक चम्पा-निवासी को बारूद बनाना सिखाया था। तब फिर काम्बोज के राजकुमार को यह शिक्षा क्या आपने इसीलिए नहीं दी कि वह आपका भक्त शिष्य है?

पुण्डरीक : मुझे लज्जित मत करो राजकुमारी। चम्पा के जिस व्यक्ति को मैंने अग्निचूर्ण बनाना सिखाया था, उसने मुझसे प्रतिज्ञा की थी कि वह कभी किसी भी दशा में यह रहस्य किसी अन्य पर प्रकट न होने देगा। परन्तु मैं मानता हूँ कि वैसा करना भी मेरी ग़लती थी। मुझे नहीं मालूम था कि वह व्यक्ति इस युद्ध में चम्पा की सेना का इस तरह साथ देगा। नहीं तो, यह पूरी तरह सम्भव था कि लाचार होकर मैं यशोवर्मा को भी बारूद बनाने की विधि बता देता। और उस व्यक्ति को भी यह रहस्य बताने का एक विशेष कारण था। एक विशेष अभिप्राय से ही मैंने उसे वह महत्वपूर्ण रहस्य दिया था।

इन्दिरा : वह अभिप्राय क्या था?

पुण्डरीक : यह तो मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ कि अपने एक अत्यन्त घनिष्ठ और शक्तिशाली मित्र के भरोसे ही अपनी युवावस्था के दिनों में मैं विदेशयात्रा के लिए रवाना हुआ था। कुमारी द्वीप में मेरा उनका वियोग हो

गया । मैं बरसों तक उन्हें खोजता रहा और वह न मिले ।

इन्दिरा : तब ?

पुण्डरीक : कई बरसों के बाद जब मैं चम्पा में था, उस व्यक्ति ने मुझे भरोसा दिलाया कि मेरे वह मित्र अभी जीवित हैं और उसी प्रदेश के एक छोटे से टापू में हैं । उसनें मुझे वचन दिया कि वह उनसे मुझे मिला भी देगा । मैंने उसकी इस बात पर विश्वास इसलिए कर लिया कि मेरे मित्र के सम्बन्ध में उसने कहा कि उन्हें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भेद की बात ज्ञात है और यह भी कि वह बात मुझे भी मालूम है ।

इन्दिरा : वह बात क्या थी ?

पुण्डरीक : मैंने सोचा कि वह अग्निचूर्ण के रहस्य की बात का इशारा कर रहा होगा । क्योंकि मेरे वह मित्र किसी योग्य और पात्र व्यक्ति को यह रहस्य बताकर एक साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा ही से तो उन द्वीपों में आए थे । मेरे इन मित्र में कोई दैवी शक्ति विद्यमान थी और वह मुझसे कहा करते थे कि एक विशेष व्यक्ति को ही वह अपना रहस्य देंगे । उन्हें शायद इसका भी कुछ-कुछ अभास था कि वह व्यक्ति कौन है ।

इन्दिरा : तो इस व्यक्ति को आपने वही पात्र समझा ?

पुण्डरीक : मैं शायद ठगा गया । इस चम्पा-निवासी की

बहकावट में आकर मैंने उसे वह रहस्य भी बता दिया और वह मुझे अपने मित्र से मिला भी न सका। उसे वास्तव में उनका कुछ भी पता नहीं था। मैं धोखे में आ गया।

इन्दिरा : आप बड़े भोले हैं दादा !

पुण्डरीक : जवानी में सब कोई भोले होते हैं बेटी। परन्तु तुम तो दूसरी-दूसरी बातें करने लगीं। मैंने तुमसे कहा था न कि आज मैं तुम्हें अनेक अत्यधिक महत्वपूर्ण बातें बताऊँगा। पहले सब बातें सुन तो लो ! इतने दिनों तक मैंने जान-बूझकर ये बातें तुम से नहीं कही थीं।

इन्दिरा : अच्छा दादा, पहले आप सब बातें मुझे बता दीजिए। मेरे पिताजी ने मुझे बहुत सिर चढ़ा रक्खा है, इससे मुझे बीच ही में बात टोकने की, बहस करने की, आदत सी पड़ गई है। क्षमा कीजिएगा। हां, तो यशोवर्मा के जहाजों का क्या हुआ ?

पुण्डरीक : शिविर के अग्निकाण्ड से भयभीत होकर सेनापति श्रीदेव जब अपनी सेना समेत अपने जहाजों के निकट पहुँचे तो वहां भी अपना एक जहाज उन्हें जलता हुआ मिला। काम्बोज की सम्पूर्ण सेना यह दृश्य देखकर अत्यधिक भयभीत हो गई। कुमार जनार्दन की आज्ञा मानकर सेनापति श्रीदेव अपने सम्पूर्ण जहाजों सहित काम्बोज की ओर लौट चले।

इन्दिरा : युवराज और जनार्दन का कुछ पता चला ?

पुण्डरीक : अभी तक तो कुछ भी पता नहीं चला। परन्तु यह मुझे विश्वास है कि दोनों एक दूसरे से मिल गए हैं और जहां कहीं भी हैं, सुरक्षित हैं।

इन्दिरा : तो अब हम लोगों को क्या करना चाहिए ?

पुण्डरीक : मुख्यतया इसी उद्देश्य से तो मैं तुम्हारे पास आया हूँ। नहीं तो पूरे साठ बरसों के बाद, जब मेरी पीढ़ी के इने-गिने व्यक्ति ही यहां बाकी बच रहे हैं और जो लोग बचे हैं, उनमें से भी कोई मेरी जान-पहचान का नहीं है, मैं पुनः मातृभूमि की शरण में वापस न आया होता। विदेश ही में अपने जीवन के शेष दिन पूर्ण कर देता। परन्तु पहले तुम पूरी बातें तो सुन लो।

इन्दिरा : अभी तक कुछ और बातें भी बाकी हैं क्या ?

पुण्डरीक : सेनापति श्रीदेव का क्या हुआ, यह तो तुमने पूछा ही नहीं।

इन्दिरा : वह कुशलपूर्वक काम्बोज नहीं पहुँच गए क्या ?

पुण्डरीक : काम्बोज तो वह पहुँच गए, परन्तु वहां उनका स्वागत नहीं हुआ। वहां पहुँचते ही अधिकांश सैनिकों से शस्त्र रखवा लिए गए और श्रीदेव तथा उनके अनुयाइयों को बन्दी बना लिया गया।

इन्दिरा : (चौंककर) यह क्यों हुआ गुरुदेव ?

पुण्डरीक : युवराज यशोवर्मा के चचेरे भाई कृष्णवर्मा ने

अपने आपको काम्बोज का राजा घोषित कर दिया है। यशोवर्मा के सभी अनुयायी कैद कर लिए गए है।

इन्दिरा : काम्बोज का राजकार्य तो यशोवर्मा के चचा कर रहे थे न ? उनका क्या हुआ ?

पुण्डरीक : कृष्णवर्मा उन्हीं का तो बिगड़ा हुआ पुत्र है। उस के पिता ने उसके इस निन्दनीय कार्य का घोर विरोध किया था, इससे कृष्णवर्मा ने उन्हें भी जेल में डाल दिया है। वह बेचारे वृद्ध हो गए हैं, कुछ कर न सके।

इन्दिरा : ओह, यहां तक !

पुण्डरीक : हां, यहां तक। इन सब दशाओं में मैं यहां न आता, तो बताओ और कहां जाता ?

इन्दिरा : अच्छा दादा, पहले आप सारे समाचार सुना लीजिए।

पुण्डरीक : अब और कोई विशेष समाचार बाकी नही है बेटी ! पिछले वर्ष की इन सब घटनाओं से मेरा चित्त बहुत उद्विग्न हो गया था। परन्तु तुम्हारे पास आकर, तुमसे मिलकर, मेरी वह सम्पूर्ण उद्विग्नता नष्ट हो गई है। इस जरा से समय में मैं तुम्हें इतना अधिक पहचान गया हूँ। जैसे तुम सचमुच मेरी ही गोद में खेलती रही हो और मैने ही पाल-पोसकर तुम्हें इतना बड़ा किया है।

इन्दिरा : दादा, यह बताओ कि हम लोगों को अब करना क्या चाहिए ?

पुण्डरीक : हमें अब यशोवर्मा की खोज करनी चाहिए।

इन्दिरा : और तब ?

पुण्डरीक : तब और क्या ? हम लोगो की जरा-सी सहायता पाकर ही यशोवर्मा हमारी और अपने देश की सभी कठिनाइयों का हल स्वयं निकाल लेगे।

इन्दिरा : मै तुम्हारी यह बात नही मानती दादा ! ऐसा ही होता, तो उन्हें पराजय का मुँह क्यों देखना पड़ता।

पुण्डरीक : तब तो बात ही दूसरी थी। उन अप्रत्याशित अग्नि-काण्डों के सम्मुख उनका सम्पूर्ण बल व्यर्थ हो गया। वह स्वयं तो अग्निचूर्ण के सम्बन्ध मे कुछ जानते ही नही थे।

इन्दिरा : अब भी तो वही बात है। अब भी तो यशोवर्मा अग्निचूर्ण के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते।

पुण्डरीक : तो तुम क्या करने को कहती हो बेटी ?

इन्दिरा : आप उन्हें अग्निचूर्ण बनाने की विधि सिखा दीजिए न।

पुण्डरीक : अच्छा बेटी, ऐसा ही होगा। इतने थोड़े समय में तुमने मेरे हृदय पर सन्तान का-सा वह अधिकार बना लिया है, जो यशोवर्मा भी अभी तक नही बना पाया था।

इन्दिरा : वाह, यह आप क्या कहते हैं दादा ! जाने भी दीजिए। अगर यही बात होती तो यशोवर्मा के कष्ट की बात कहते-कहते आपकी देवतुल्य, परिपक्क और

निर्मोही आंखों में पानी क्यों भर आता है ? मैं सब समझती हूँ दादा ! आप युवराज यशोवर्मा को जितना चाहते है, उतना कोई पिता अपनी सन्तान को भी क्या चाहेगा। हां दादा, आप ये सब बातें और अपना सम्पूर्ण परिचय मुझ से इतने दिनों तक छिपाए क्यों रहे ? आपको मुझ पर विश्वास नहीं आया था क्या ?

पुण्डरीक : तुम पर विश्वास न आता ! तुम पर तो दानव को भी झख मारकर विश्वास करना पड़ेगा। मुझे वह प्रभात भली प्रकार याद है, जब मै अकेला अत्यन्त उदास भाव से जहाज़ पर से उतरा था। तुम सहसा मेरे सम्मुख आई और मुझसे पूछने लगीं कि 'आप कहां से आ रहे हैं ?' मैने तुम्हारी बात का जवाब नहीं दिया और अपनी पोटली उठाकर आगे बढ़ता चला गया। तुम दौड़कर मेरे सामने आ गई और पुनः मुझसे वही प्रश्न करने लगी। तुम्हारी पवित्रतम और उज्ज्वलतम आँखों मे तब एकाएक आँसू क्यों भर आए थे बेटी ?

इन्दिरा : उँह, यह भी कोई सवाल है ! आप ही बताइए, आपके देवतुल्य चेहरे पर उस समय उतनी गहरी उदासी और उतनी अटूट निराशा का भाव क्यों अंकित था ? उँह, मै आपसे नहीं बोलती ! मेरी आँखों में आँसू देखकर भी आप मेरे साथ आने को तैयार न होते थे !

पुण्डरीक : मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ बेटी ! तुम्हारे हृदय की अनन्त करुणा का यह अक्षय भण्डार सदा अक्षय बना रहे !

[कुमार परान्तिक का चेहरा निरन्तर गम्भीर बना रहता है। वह तन्मय भाव से चुपचाप खड़ा रहता है। पुण्डरीक उस के सिर पर अपना स्नेहभरा हाथ रखकर उसे सहलाने लगते है।]

दृश्य २

देश—सुदूर पूर्व-दक्षिण महासमुद्र
स्थान—महासमुद्र का खु ा वक्षस्थल
समय—सांझ

[महासमुद्र में जीर्ण-शीर्ण-सा एक बड़ा जहाज़ तैर रहा है। समुद्र इस समय शान्त है; परन्तु स्पष्ट प्रतीत होता है कि हाल ही में समुद्र में भीषण तूफ़ान आ चुका है। उस तूफ़ान के चिह्न इस जहाज़ पर स्पष्ट रूप से अङ्कित है। जहाज़ के अनेक मस्तूल टूट गए हैं और पाल बह गए है। अनेक फटे हुए पाल अब भी जीर्ण-शीर्ण झण्डियो की तरह लटके हुए दिखाई दे रहे हैं। जहाज के ऊपर लहरों का जो प्रहार होता रहा है, उसके चिह्न वहाँ स्पष्टतः देखे जा सकते हैं। जहाज़ पर जगह-जगह सामुद्रिक वनस्पतियाँ उलझी हुई हैं, कहीं-कहीं फेन भी अटका हुआ

है। राजकुमार यशोवर्मा, कुमार जनार्दन और श्रेष्ठि मकरन्द इस जहाज़ के सब से ऊँचे भाग पर खड़े होकर समुद्र की ओर देख रहे हैं। जहाज़ एक ओर को धीरे-धीरे बढ़ता चला जा रहा है।]

जनार्दन : (धीरे से) रंग-ढंग कुछ अच्छे नहीं हैं। हम लोगों को बहुत सावधान रहना चाहिए।

यशोवर्मा : क्यों, कोई नई बात हुई है क्या ?

जनार्दन : मांझियों के आसार मुझे अच्छे नज़र नहीं आते।

मकरन्द : दिल ही दिल में मैं भी इसी बात से डर रहा था।

यशोवर्मा : तुम्हें उन पर सन्देह किस तरह हुआ ?

जनार्दन : तूफ़ान के समय मैंने उन्हें परस्पर कानाफूसी करते हुए देखा है। उनकी नज़र मुझ से छिपी नहीं रही।

मकरन्द : मुझे मालूम है कि ये वर्णसंकर मांझी प्रायः विश्वनीय नहीं होते। परन्तु इनमें क्रान्ति कर देने का साहस भी आ सकता है, इसकी मुझे कल्पना भी न थी।

यशोवर्मा : परन्तु आखिर उन्हें हम लोगों से शिकायत क्या है ? जो विपत्तियां इस जहाज़ पर आई हैं, उनमें हम लोग भी तो सहयोगियों की तरह उनका हाथ बंटाते रहे हैं।

जनार्दन : हम लोग राह भटक गए हैं। मुद्दत से इसी तरह समुद्र में भटकते फिर रहे हैं। जहाज़ में भोजन पानी सभी कुछ चुक गया है। थोड़ा-थोड़ा खाकर और घूंट-घूंट जल पीकर हम लोग अपना गुज़ारा कर रहे हैं। उस पर कल रात का वह भयंकर तूफ़ान, जिसने हमारे इस

विश्व प्रसिद्ध जहाज़ को अधमरा-सा बना दिया। परमात्मा ने अत्यन्त कृपापूर्वक हम लोगों के लिए वर्षा-जल भेजा था, अथवा हम लोगों का निष्ठुर उपहास किया था, कुछ भी समझ नहीं आता। वर्षा और तूफ़ान इतनी ज़ोर से और इतना अचानक आए कि हम लोग अपने जहाज़ को बचाने की चिन्ता में रत्ती भर भी वर्षाजल का संग्रह नहीं कर पाए। प्रकृति जब क्रुद्ध होती है, तो कितना निर्दय मज़ाक कर जाती है।

यशोवर्मा : यह सब तो ठीक है। परन्तु इस सब से मांझियों की नाराज़गी का क्या सम्बन्ध है ?

जनार्दन : उनका ख्याल है कि जहाज़ पर ये सब आपत्तियां हम लोगों के कारण ही आई हैं। श्रेष्ठि मकरन्द से उन्हें कोई शिकायत नहीं। यह उनके मालिक हैं। हम दोनों को ही वे इस सम्पूर्ण विपत्ति का मूल कारण समझते हैं।

मकरन्द : मेरा तो यह भी ख्याल है कि मांझियों का यह सम्पूर्ण क्रोध कुमार जनार्दन पर भी नहीं, (युवराज से) केवल आप ही पर है।

यशोवर्मा : यह क्यों ?

मकरन्द : इनमें से अधिकांश मांझी वर्णसंकर हैं, उन्हें देश, जाति, कुल आदि का ज़रा भी ध्यान नहीं होता। परन्तु इन मांझियों में चम्पा का एक नागरिक भी है। मुझे यह भय है कि कहीं उसे आपकी वास्तविकता का परिचय तो नहीं मिल गया।

जनार्दन : मेरी राय है कि आप इस बात का पता लगाइए। आप पर उन सबको अभी तक पूरा विश्वास है।

मकरन्द : बहुत अच्छा। परन्तु आप दोनों को अब विशेष रूप से सतर्क अवश्य रहना चाहिए।

[प्रस्थान]

यशोवर्मा : भाग्य कुछ विपरीत-सा प्रतीत होता है।

जनार्दन : आप भी भाग्य का विधान मानते है क्या ?

यशोवर्मा : मानने या न मानने का क्या होता है ! मुझे तो समझ नहीं आता कि आखिर हमारी इस यात्रा का अन्त क्या होगा। हम लोग बारह सप्ताहों से समुद्र में भटक रहे है। न तो राह का कुछ पता चलता है और न कोई द्वीप ही दिखाई देता है। इन माँझियों से मैं नहीं डरता। इनका उपाय मेरे पास है, परन्तु प्रकृति से तो डरना ही होगा। इस तरह आखिर कब तक काम चलेगा।

जनार्दन : युवराज, आप मानें या न मानें। मैं भाग्य के विधान को अवश्य स्वीकार करता हूँ। आखिर यह सब यों ही हो गया है क्या ? आपको चम्पा में पराजित होना पड़ा। कृष्णावर्मा की मति बिगड़ गई। पितृव्य जेल मे हैं। श्रीदेव जेल में हैं। आप इस तरह मारे-मारे फिर रहे हैं। ऋषि पुण्डरीक का पता नहीं मिलता। मकरन्द-सा शक्तिशाली सहायक और यह जहाज़ पाकर भी अपने दुर्भाग्य के

कारण हम लोग कुछ कर नहीं सके। सहायता पाने के लिए हम लोग भारतवर्ष जाना चाहते थे और चौथे ही दिन राह भटक गए। कल रात वह भयंकर तूफ़ान आया और अब माँझी विद्रोह करना चाहते हैं। यह सब हमारा दुर्भाग्य नहीं है, तो और क्या है ? मैं भाग्य पर विश्वास करता हूँ युवराज !

यशोवर्मा : मैंने अभी कहा न कि भाग्य पर विश्वास करना या न करना दोनों एक समान हैं। भाग्य चाहे जो कुछ हो, हमें अपना कर्तव्य पालन तो करना ही होगा। भाग्य को दोष देकर हाथ पर हाथ धर कर हम बैठ तो नहीं सकते ! इसीसे मैं कहता हूँ कि भाग्य पर विश्वास करना या न करना एक ही बात है।

जनार्दन : आप ठीक कहते हैं युवराज ! हमें अपना कर्तव्य पालन तो करना ही होगा।

[इसी समय दाहिनी ओर से एक तेज़ और नोकीली बरछी तेज़ी से आती है और जनार्दन के कन्धे से छूती हुई एक मस्तूल में जा चुभती है। जनार्दन को चोट तो नहीं पहुँचती, परन्तु इस अप्रत्याशित आक्रमण से वह गिर पड़ते हैं। युवराज को दिखाई देता है कि दाहिनी ओर, जहाज़ की ऊपरी दीवार के साथ से होकर, कोई आदमी भागने का प्रयत्न कर रहा है। वह दौड़-कर उसे पकड़ लाते हैं। जनार्दन उठ-कर खड़े हो जाते हैं।]

यशोवर्मा : (आक्रमणकारी से) बोलो, तुम कौन हो ?

[वह व्यक्ति चुपचाप खड़ा रहता है। इसी समय मकरन्द का पुनः प्रवेश]

मकरन्द : मुझे सभी कुछ मालूम हो गया युवराज ! अब भय का कोई कारण नहीं है ! (अगले ही क्षण चौंक-कर) यह क्या ! यह कौन है युवराज ?

यशोवर्मा : मैं नहीं जानता कि इसका नाम क्या है ?

मकरन्द : इसका अपराध क्या है ?

[यशोवर्मा मुँह से कुछ नहीं कहते। वह उंगली के इशारे से मकरन्द को वह बरछी-दिखा देते हैं, जिसका आधा भाग मस्तूल में धंसा हुआ है।]

मकरन्द : (उस मल्लाह से) तूम्हारा नाम क्षेत्रपाल है न ?

[वह व्यक्ति भय से कांपने लगता है]

जनार्दन : भय का कारण कैसे नहीं रहा मकरन्द ?

मकरन्द : प्रमुख खलासी ने सभी बातें मुझे खोल-कर बता दी हैं। चम्पा के इस खलासी का नाम क्षेत्रपाल है। यही व्यक्ति सब लोगों को युवराज के विरुद्ध भड़का रहा था। लोग इसकी बातों में कुछ-कुछ आ भी गए थे। यह लोगों से कहता था कि जहाज़ पर आने वाली सभी विपत्तियां इन्हीं दोनों विदेशी यात्रियों के कारण हैं। क्रमशः सभी लोगों को इस बात पर विश्वास होता चला गया। परन्तु आज जब इसने लोगों को बताया कि यह विदेशी युवक युवराज यशोवर्मा हैं, तो उनके हृदय में आपके प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न न होकर और भी अधिक श्रद्धा उत्पन्न

हो गई। आपके नाम का इन सभी द्वीपों में बहुत अधिक प्रभाव है युवराज ! यह अभी थोड़ी ही देर पहले की बात है। मालूम होता है, अन्त में सब लोगों से निराश होकर इसने स्वयं ही आप पर आक्रमण कर दिया।

यशोवर्मा : तुम्हें मुझ से क्या शिकायत है क्षेत्रपाल ?

[क्षेत्रपाल चुपचाप खड़ा रहता है। उसके दोनों हाथ खुले हुए हैं। युवराज ने उसे अब पकड़ नहीं रखा। क्षेत्रपाल सहसा बिजली की तेज़ी से उछल कर समुद्र में कूद जाता है। इस समय तक सभी ओर अन्धकार व्याप्त हो गया है। केवल जहाज़ पर ही उल्काओं का तीव्र प्रकाश विद्यमान है। क्षेत्रपाल के समुद्र में कूदने से छप-सी आवाज़ आती है और क्षणभर में उसका कोई चिन्ह शेष नहीं रह जाता।]

मकरन्द : चलो, जाने दो। इस सब का हमें किसी से ज़िक्र तक भी नहीं करना चाहिए।

यशोवर्मा : बेचारा क्षेत्रपाल !

जनार्दन : यह समस्या भी हल हो गई।

यशोवर्मा : असली समस्या का तो अभी कोई हल नहीं मिला !

[तीनों जने चुपचाप खड़े रह-कर समुद्र के अन्धकारमग्न वक्षस्थल की ओर देखने लगते हैं। सहसा जहाज़ के दूसरे कोने से एक मांझी चिल्ला उठता है।]

मांझी : प्रकाश ! प्रकाश !

[सम्पूर्ण जहाज़ पर जैसे उत्साह का भूकम्प-सा आ जाता है। सभी मांझी दौड़-दौड़-कर जहाज़ के ऊपरी भाग पर पहुँचने लगते हैं। इसी समय वह मांझी खुशी से उन्मत्त-सा होता हुआ, भाग-कर इन लोगों की ओर आता है। सभी लोग वहां जमा होने लगते हैं।]

मांझी : श्रीमन् प्रकाश ! प्रकाश !

यशोवर्मा : किस ओर ?

[वह मांझी उंगली से पश्चिम दिशा की ओर इशारा करता है। बहुत ध्यान से देखने पर उस ओर एक हल्का-सा प्रकाश टिमटिमाता हुआ-सा दिखाई देता है। थोड़ी ही देर में सभी लोग उस प्रकाश को देख लेते हैं।]

जनार्दन : यह कौन-सा द्वीप हो सकता है मकरन्द ?

मकरन्द : कुछ समझ नहीं आता युवराज ! मालूम नहीं, हम लोग इस समय कहां हैं ? यह प्रकाश यहां से कम से कम ३५ कोस पर होगा और इस समुद्र के किसी भी ज्ञात द्वीप में इतना शक्तिशाली प्रकाश-स्तम्भ विद्यमान नहीं है। भारतवर्ष के सुपत्तन, ताम्रलिप्ति आदि बन्दरगाहों पर शक्तिशाली प्रकाश-स्तम्भ अवश्य हैं। परन्तु यह भारतवर्ष तो हो ही नहीं सकता। हम लोग उससे सर्वथा विभिन्न दिशा में सप्ताहों तक बढ़ते चले गए हैं।

यशोवर्मा : तो फिर यह कौन-सा देश है ?

मकरन्द : कुछ कहा नहीं जा सकता।

यशोवर्मा : (मांझियों से) तुम में से कोई बता सकता है कि यह कौन-सा द्वीप है ?

प्रमुख मांझी : नहीं श्रीमन्, हम लोगों में से कभी कोई इस ओर नहीं आया।

यशोवर्मा : चाहे यह कोई भी द्वीप क्यों न हो, जहाज़ को इसी ओर बढ़ाते जाओ।

मकरन्द : पाल तान दो। वायु हमारे अनुकूल है। शाबाश माँझियो !

[सभी माझी उत्साहपूर्वक अपने-अपने काम पर लग जाते हैं। पाल तान दिए जाते हैं और जहाज की दिशा ठीक उसी प्रकाश की ओर कर दी जाती है। जहाज तेजी से उसी ओर बढ़ने लगता है।]

यशोवर्मा : हम लोग वहां कब तक पहुँच जाएंगे मकरन्द ?

मकरन्द : यदि वायु का प्रवाह ठीक रहा, तो कल प्रातःकाल तक हम लोग अवश्य ही वहां पहुँच जाएंगे।

[यशोवर्मा के मुंह पर प्रसन्नता चमकने लगती है और मकरन्द बहुत ही मधुर स्वर में बासुरी बजाने लगता है। चप्पू चलाने की आवाज इस वंशीध्वनि की तान का काम दे रही है। जहाज़ बढा चला जा रहा है।

दृश्य ३

देश—*आशा द्वीप*
स्थान—*समुद्र-मध्य का शिवमन्दिर*
समय—*सूर्योदय से पूर्व*

[अत्यन्त कोमल और हिम-से श्वेत रेशम के वस्त्र पहने हुए राजकुमारी रेवा शिवमन्दिर मे पूजा करने आई है। शिवमन्दिर के भीतर बैठा हुआ सन्दीप मूर्ति के सम्मुख आरती कर रहा है और राजकुमारी रेवा

मन्दिर के द्वार के सम्मुख, खुले और ऊंचे स्थान पर श्रद्धाभाव से चुपचाप ध्यानमग्ना-सी बैठी है। तीनों सखियाँ भी उसी जगह बैठी हैं। सूरज अभी नहीं निकला। आकाश में हल्के-हल्के बादल छाए हुए हैं और प्रातः-कालीन अव्यक्त सूर्य की रश्मियों से उनका रंग लाल-लाल हो उठा है। अत्यन्त स्वच्छ और सुशीतल वायु चल रहा है। मन्दिर के पिछवाड़े में बहुत से पक्षी बैठे हैं, जिनका कलरव इस समय बहुत ही मधुर प्रतीत हो रहा है। थोड़ी ही देर में पूजा समाप्त हो जाती है और सन्दीप राजकुमारी को आशीर्वाद देकर मन्दिर के पिछवाड़े में चला जाता है। रेवा अपनी जगह बैठी रहती है। सहसा उसके जी में जैसे उमङ्ग-सी उठती है और अत्यन्त मधुर स्वर में वह गाने लगती है।]

गीत

कुसुम दल से वेदना के चिह्न को,
पोंछती जब आंसुओं से रश्मियां;
चौंक उठती अनिल से निश्वास छू,
तारिकाएँ चकित-सी अनजान-सी;
　　तब बुला जाता मुझे उस पार जो
　　दूर के संगीत-सा वह कौन है ?
शून्य नभ पर उमड़ जब दुख भार-सी,
नैश तम में, सघन छा जाती घटा;
बिखर जाती जुगनुओं की पांति भी,
जब सुनहले आंसुओं के हार-सी;
　　तब चमक जो लोचनों को मूंदता,
　　तड़ित् की मुस्कान में वह कौन है ?--

अवनि अम्बर की रुपहली सीप में,
तरल मोती-सा जलधि जब कांपता;
तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से,
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में;
सुरभि बन जो थपकियां देता मुझे,
नींद के उच्छ्वास-सा वह कौन है ?*

एक सखी : आप कितना अच्छा गाती हैं राजकुमारी ?

दूसरी सखी : यह भव्य मन्दिर, यह शान्त समुद्र, यह सुन्दर आकाश और उस पर आपका यह मादक संगीत। इन सब से बढ़कर सुखद परिस्थितियों की कल्पना मनुष्य का मस्तिष्क कर ही नहीं सकता।

रेवा : सुखद परिस्थितियाँ ! परिस्थितियाँ तो शायद सचमुच सुखद हैं; परन्तु मेरे हृदय के भीतर अनन्त प्रतीक्षा की जो बेकली भरी है, उसे यदि तुम लोग जान पातीं !

तीसरी सखी : राजकुमारी ! बहन ! हम लोग किस तरह कहें कि हम सब तुम्हारे चित्त का बोझ बँटाने के लिए कितना अधिक व्याकुल हैं। परन्तु तुमने कभी हमें इस योग्य समझा ही नहीं।

रेवा : यह बात नहीं बहन ! मेरी चिर-प्रतीक्षा इस सुन्दर प्रभात के समान निष्कलंक है। सम्भव है कि वह इसी के समान अर्थशून्य भी हो।

गीतकार : महादेवी वर्मा

दूसरी सखी : परन्तु आखिर वह है कैसी प्रतीक्षा ?

रेवा : अब तुम लोगों से कहने का समय आ गया है, बहनो ! उस रहस्य को मैं अब और अधिक समय तक अपने जी ही जी में नहीं रख सकती ।

तीसरी सखी : वह रहस्य कौन-सा है राजकुमारी ?

रेवा : सामने का वह ऊंचा चबूतरा तुम देख रही हो न । वह दिन तुम्हें याद है, जिस दिन समुद्र में भयंकर तूफ़ान आया हुआ था और गुरुदेव इसी चबूतरे पर से लहरों का शिकार बन गए थे ?

पहली सखी : वही दिन जब तुम भी इसी मन्दिर में थीं और बीच का मार्ग जलमग्न हो जाने से तुम्हारी सहायता के लिए कोई यहां आ नहीं सकता था ? राजमाता और राजमहलों के सभी निवासी उस किनारे पर खड़े होकर तुम्हें ही पुकार रहे थे । भला वह दिन भी कभी भूला जा सकता है । जब तुम घर वापस आई थीं, तब तुम्हारे चेहरे पर कितना गहरा भय अङ्कित था !

रेवा : हां, उसी दिन । उस दिन बाबा ने, गुरुदेव ने मुझे मेरा भविष्य बतलाया था ।

तीसरी सखी : तुम्हारा भविष्य ?

रेवा : हां, मेरा भविष्य ।

तीसरी सखी : (अत्यन्त उत्सुकता से) वह क्या ?

रेवा : वह यही कि मुझे अनन्त काल तक प्रतीक्षा करनी चाहिए ।

इसी तरह प्रतीक्षा करनी चाहिए, जिस तरह मैं प्रतीक्षा कर रही हूँ।

तीसरी सखी : किसकी प्रतीक्षा ?

रेवा : विदेश से आने वाले एक राजकुमार की। बड़े-बड़े पालों वाले और ऊँचे-ऊँचे मस्तूलों वाले एक जहाज़ पर चढ़कर वह इस द्वीप में आएगा !

तीसरी सखी : उसकी प्रतीक्षा किस लिए ?

रेवा : इसलिए कि वह हमें स्वर्ग का सन्देश सुनाएगा।

पहली सखी : वह कब आएगा ?

रेवा : यही तो मालूम नही। बाबा इस सम्बन्ध में मुझ से कुछ भी नहीं कह गए। इसी से तो मैं प्रतीक्षा कर रही हूं। बहुत समय से प्रतीक्षा कर रही हूँ और न जाने कब तक मुझे यह प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

दूसरी सखी : चलो राजकुमारी, अब महलों को चलें।

रेवा : तुम लोग जाओ। मै बहुत शीघ्र आती हूँ। कुछ देर तक मै ज़रा यहां एकान्त में बैठना चाहती हूँ।

[तीनों सखियो का प्रस्थान]

रेवा : (आप ही आप) एक विदेशी राजकुमार, जिसे न मैंने कभी देखा, न सुना। जाने वह कैसा है। दूसरी जाति का, बहुत दूर के दूसरे देश का! उसकी प्रतीक्षा ! यह कितनी लम्बी प्रतीक्षा है। मैं क्या उस राजकुमार को चाहती हूँ ! नहीं, मैं उसे ज़रा भी नहीं चाहती। फिर भी वह मेरी कल्पना

का आदर्श पुरुष है। वह साहस और वीरता का अवतार है। ऐ मेरी कल्पना के आदर्श राजकुमार! मैं तुम्हें अनन्त शक्ति-सम्पन्न और पुरुषोत्तम मानती हूँ। देखना, कहीं तुम्हें देखकर मेरी कल्पना का यह सुख-स्वप्न नष्ट न हो जाए !

[एक ठंडी सांस लेकर रेवा उठ खड़ी होती है और यों ही, एकदम निरुद्देश्य भाव से, समुद्र की ओर देखने लगती है। मन्दिर से केवल दो-ही तीन मीलों की दूरी पर उसे पाल वाला एक विशालकाय जहाज दिखाई देता है। एक क्षण के लिये रेवा को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं होता। उसके बाद उसकी आँखों में कृतज्ञता के आँसू भर आते हैं और वह घुटने टेककर, हाथ जोड़कर, शिवजी की मूर्ति को प्रणाम करती है। तदन्तर जरा विचलित-से स्वर में वह पुकारती है।]

रेवा : सन्दीप ! सन्दीप !!

(दूर से आवाज आती है) आया राजकुमारी !

[और सन्दीप सामने आ जाता है।]

रेवा : देखो सन्दीप, इस मन्दिर पर राजकीय झंडा फहरा दो। मन्दिर के पीछे, तहखाने में अग्निचूर्ण के जितने गोले पड़े हैं, उन्हें सामने के पुल पर क्रम से रखवा दो। नीचे जाकर राजमहल में आज्ञा दो कि राजकीय वाद्यों से स्वागत के मधुर स्वर बजाए जाएँ। उद्यान के अध्यक्ष से कहो कि राजकीय उद्यान में जितने भी फूल हैं, उन सब को एकत्र कर वह समुद्र तट के इस मन्दिर के निकट वाले बन्दरगाह पर भेज दे। आज आशाद्वीप का राज-

कीय अतिथि आ रहा है। आशाद्वीप के सभी नागरिकों से कहो कि वे बन्दरगाह पर एकत्र हों।

सन्दीप : (अत्यन्त चकित होकर) आप यह क्या कह रही हैं राजकुमारी ! कौन कहाँ से आ रहा है ?

रेवा : (अंगुली से उस जहाज़ की ओर लक्ष्य कर) वह देखो राजकीय अतिथि उस जहाज़ से आ रहा है। जाओ, ज़ल्दी करो ! समय अधिक नहीं है।

[अत्यन्त चकित भाव से सन्दीप का प्रस्थान।]

दृश्यान्तर (१)

स्थान—*समुद्र में यशोवर्मा का जहाज़*
समय—*प्रभात*

[यशोवर्मा, जनार्दन और मकरन्द जहाज़ के सबसे ऊँचे भाग पर खड़े होकर आशाद्वीप की ओर देख रहे हैं।]

यशोवर्मा : मकरन्द, अब भी तुम नहीं बता सकते कि यह कौन-सा द्वीप है ?

मकरन्द : (अत्यन्त आह्लादित स्वर में) यदि मुझे ठीक पता न होता कि यह एक ही नज़र में दिखाई दे जाने वाला छोटा-सा द्वीप भारतवर्ष कभी नहीं हो सकता, तो इस अत्यन्त नयनाभिराम नगर को मैं अवश्य ही अपने देश

का कोई अज्ञात परन्तु बहुत श्रेष्ठ बन्दरगाह समझ लेता ।

जनार्दन : कितना भव्य है यह दृश्य ! यह विशाल शिवमन्दिर यहां किसने बनाया ! वह दूर पर दिखाई देने वाले महल कितने सुन्दर हैं ! इतना सुन्दर नगर तो सम्पूर्ण काम्बोज में भी कोई नहीं है ।

मकरन्द : मेरी आँखों में आनन्द के आंसू उमड़ रहे हैं युवराज! हमारा वह सम्पूर्ण भटकना आज सफल हो गया । संसार से एकदम पृथक्, इस अज्ञात द्वीप में एक आदर्श आर्य नगर का यह दृश्य देखकर मुझे जो आत्माभिमान आज अनुभव हो रहा है, वह आज तक कभी न हुआ था । इच्छा होती है, नाचूं, गाऊं और इस उपलक्ष्य में अपना सर्वस्व दान कर दूं !

जनार्दन : कितना सुन्दर दृश्य है ! हरे-भरे टीले पर ये स्वच्छ सुन्दर महल इस तरह जान पड़ते हैं, जैसे हरे रेशम से मढ़े किसी अत्यन्त सुन्दर से पात्र में किसी अत्यधिक सुरुचिसम्पन्न व्यक्ति ने उन्हें रत्नों के समान सजा दिया हो । प्रभात के सुन्दर वातावरण में यह दृश्य मानो शत-गुणा अधिक अभिराम बन गया है ।

यशोवर्मा : वह देखो, हमारे जहाज को द्वीप-निवासियों ने देख लिया । अभी देखते-देखते शिवमन्दिर के सुनहरे शिखर पर वह विशाल पताका फहरा दी गई है । ओह, वह तो लाल पताका है ! ऋषि पुण्डरीक की पताका ! नहीं,

आर्यत्व की पताका ! मनुष्यत्व की पताका !

जनार्दन : वह देखिए युवराज, किनारे पर सैकड़ों-हजारों नागरिक जमा होते चले जा रहे है। उनकी पोशाक से कितनी सुरुचि टपकती है।

मकरन्द : बन्दरगाह मन्दिर के आधार के निकट है। वह देखिए, वे लोग वहाँ झण्डे फहराकर उधर ही आने का इशारा कर रहे है।

यशोवर्मा : और शिव मन्दिर के ठीक सामने, समुद्र की सतह से काफी ऊँचाई पर वह श्वेत-वसना, अचल, नारो मूर्ति-सी देखी तुम ने ? यह अप्सराओं का देश है या मनुष्यो का ?

[जहाज बढता चला जाता है। जहाज मित्रो का है, यह दिखाने के लिए उस पर भी लाल झडा फहरा दिया जाता है।]

दृश्यान्तर (२)

स्थान—*शिवमन्दिर के नीचे आशाद्वीप का बन्दरगाह*
समय—*सूर्योदय के बाद*

[राजकुमारी रेवा एक ऊँचे स्थान पर खडी है। उससे कुछ ही नीचाई पर उसकी तीनो सहेलियाँ हैं और उनके पीछे आशा-द्वीप के सैकड़ों नर-नारी नागरिक एकत्र हैं। रेवा के सम्मुख

सुगन्धित और अत्यन्त सुन्दर फूलों के ढेर लगे हुए हैं। राज कुमारी के दाहिनी ओर चित्रित वर्दी पहने वाद्यकों का दल तैयार खड़ा है। निकट ही पुल दिखाई दे रहा है, जिस पर से होकर शिवमन्दिर तक जाया जाता है। समुद्र में, कुछ दूरी पर यशोवर्मा का जहाज खड़ा है और उसके लंगर डाल दिए गए हैं। यशोवर्मा, जनार्दन और मकरन्द जहाज पर से उतर कर एक सुन्दर नौका पर सवार होते हैं और रेवा की ओर बढ़ते हैं। जब उनकी नौका राजकुमारी रेवा से केवल सौ हाथ की दूरी पर रह जाती है, तब सहसा पुल पर बारूद के गोले ऊँची आवाज़ करके छूटने लगते हैं। यशोवर्मा, जनार्दन आदि के लिए यह आवाज़ अश्रुतपूर्व है। वे लोग चौक जाते हैं। नाव के माँझी तो बहुत अधिक भयभीत हो जाते हैं। इसी समय यशोवर्मा की विस्मयपूर्ण दृष्टि राजकुमारी रेवा पर पड़ती है। नाव अब राज-कुमारी के बहुत निकट आ गई है। रेवा को देखकर यशोवर्मा के शरीर भर में बिजली-सी घूम जाती है। उनकी सम्पूर्ण देह में रोमांच हो आता है। क्रमशः यशोवर्मा की नाव किनारे आ लगती है। राजकुमारी रेवा आगे बढकर यशोवर्मा के गले में फूलों का हार डालती है। युवराज पर पुष्पवर्षा होती है और निकट ही से राजकीय वाद्ययन्त्र अत्यन्त मधुर स्वर में स्वागतगान बजाने लगते हैं।]

रेवा : (युवराज के गले में हार डालकर कुछ क्षणों तक बहुत गम्भीर भाव से उनके चेहरे की ओर देखते रहने के बाद) आशाद्वीप के प्रतिनिधि रूप से इस पुण्यभूमि में मैं राजकुमार का स्वागत करती हूँ।

यशोवर्मा : (अत्यन्त चकित स्वर में) आपके स्वागत के लिए मैं

हृदय से आपका अनुगृहीत हूँ। परन्तु आपको यह कैसे मालूम हुआ कि मैं कोई राजकुमार हूँ ?

रेवा : जिस तरह बन्द कमलिनी को मालूम हो जाता है कि प्रभात हो गई और सूर्य निकल आया है !

यशोवर्मा : यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है ! मुझे कुछ भी समझ नहीं आता। आप लोग मनुष्य हैं या देवता ! (इसके बाद अर्ध-स्वगत-सा वह कहने लगते है।) यह सुन्दर देश, यह आदर्श व्यवस्था, यह अनुपम सौन्दर्य और यह स्वर्गीय स्वागत। यह पृथ्वीतल है या स्वर्ग ! कुछ सूझ नहीं पड़ता !

रेवा : इधर आइए राजकुमार। मेरे साथ चलिए।

[आगे-आगे रेवा और यशोवर्मा चलते हैं, उनके पीछे तीनों सखियाँ, तब जनार्दन और मकरन्द और उनके बाद अन्य प्रमुख नागरिक। दोनों ओर से महारानी और युवराज पर पुष्पवर्षा होती जाती है और युवराज स्वप्नाविष्ट की भाँति चलते चले जा रहे हैं।]

दृश्य ४

देश—*आशाद्वीप*
स्थान—*नगर भवन*
समय—*सांझ*

[नगर भवन की विशाल इमारत में नगर के समृद्ध नागरिक एकत्र है। इनमें युवकों की संख्या अधिक है। भवन में अनेक स्थानों पर सुगन्धित पदार्थ जल रहे हैं और उनके कारण वहाँ सुगन्ध की लपटें-सी उड़ रही हैं। गद्दों पर श्वेत चादरें बिछी हुई हैं और उनके किनारों पर मसनद रक्खे हुए हैं। चार नागरिक एक जगह शतरंज की-सी कोई खेल खेल रहे हैं। उनके चारों ओर खड़े हुए अनेक नागरिक तन्मय होकर वह खेल देख रहे हैं। नगर-भवन में इसी तरह की बहुत-सी टोलियां एकत्र हैं। सभी जगह धीरे-धीरे बातचीत और हंसी-मजाक हो रहा है। कोलाहल कही भी नहीं है।]

१ नागरिक : वह मारा! तुम्हारा एक और किन्नर वह मारा!

२ नागरिक : ऊंह, किन्नर के मारने से क्या होता है, मैं तुम्हारा एक गन्धर्व भी विजय कर चुका हूँ।

३ नागरिक : और हम लोग तुम्हारे छः किन्नर पहले ही ले चुके हैं।

४ नागरिक : अपने इन्द्र की रक्षा करो। किन्नर लेकर क्या करोगे ! हम ,लोग तुम्हारे इन्द्र को अभी गन्धर्व बनाने लगे हैं।

१ नागरिक : (अपनी बाजी चलकर तीसरे नागरिक से) मित्र, इन्द्र की बात तो फिर देखी जाएगी। तुम यह सातवां किन्नर तो उठाओ।

३ नाग० : आखिर इन्द्र, गन्धर्व और यक्ष, सभी लोग किन्नरों की कृपा पर ही तो जीवित हैं। जिसके पास किन्नर नहीं, उसका प्रभुत्व किस काम का !

२ नाग० : और जिसका इन्द्र पदच्युत कर दिया गया हो, उसका सम्पूर्ण वैभव ही किस काम का। (बहुत सोच-विचारकर कोई ऐसी चाल चलता है, जिससे विपक्षियों का इन्द्र सचमुच फँस जाता है।)

४ नाग० : शाबाश मित्र, खूब चाल चली ! अब देखें, ये लोग अपने इन्द्र को किस तरह बचाते हैं।

१ नाग० : (तीसरे नागरिक से, जिसकी चाल चलने की बारी है।) मित्र, इन्द्र को बचाने की चिन्ता करो, नहीं तो इन्द्र महाराज के बिना हम लोग अभी पराजित हुए कि अभी पराजित हुए।

१ दर्शक : (धीरे से) अपनी महारानी की भी चिन्ता है किसी को ?

४ नाग० : क्या कहा तुमने ?

१ दर्शक : वही बात जो आज सम्पूर्ण आशाद्वीप कह रहा है।

२ नाग० : वही बात क्या ?

१ दर्शक : अपनी महारानी को बचाने की भी किसी नागरिक को चिन्ता है ?

[वातावरण एकदम गम्भीर हो जाता है। खेल की तरफ से सभी का ध्यान हट जाता है।]

१ नाग० : अब तो मामला बहुत बढ़ गया प्रतीत होता है !

२ दर्शक : (ज़रा आगे बढ़कर धीरे-से) महारानी और उस विदेशी राजकुमार की चरचा अब घर-घर होने लगी है।

३ दर्शक : यहां तक !

२ दर्शक : आज प्रातःकाल मेरे घर में इसी बात पर कहा-सुनी तक हो गई !

५ दर्शक : तुम अपने घर की बात कहते हो, मैंने यह चरचा घाट और बाज़ार में सुनी है।

३ नाग० : (खेल की ओर से अपना ध्यान हटाकर) अच्छा तो खेल के इन्द्र की रक्षा से पहले हम लोग अपनी महारानी की रक्षा की चिन्ता कर लें।

२ दर्शक : जो बात आज तक कभी नहीं हुई, आशाद्वीप के नागरिक उस अकल्पनीय बात को किस तरह सहन कर सकते हैं !

४ नाग० : परन्तु आखिर बात क्या है ?

३ नाग० : तुम्हें जैसे कुछ भी मालूम नहीं।

४ नाग० : नहीं, मुझे सचमुच कुछ भी मालूम नहीं।

४ दर्शक : लोग तो यहां तक कहते हैं (बहुत धीरे से) कि महारानी उस युवक से विवाह कर लेना चाहती हैं, और तुम कहते हो तुम्हें इस चरचा का ही पता नहीं। वह युवक हर समय महारानी के निकट ही बना रहता है।

२ नाग० : हम लोग इस बात को कभी सहन नहीं करेंगे।

१ नाग० : प्रतीत होता है कि उस राजकुमार ने महारानी पर जादू कर दिया है।

२ दर्शक : महारानी उस युवक में शुरू ही से इतनी दिलचस्पी क्यों ले रही थीं!

३ दर्शक : हम लोगों को महारानी के पास जाकर अनुरोध करना चाहिए कि वह आशाद्वीप की प्रतिष्ठा पर कलंक न लगने दें।

[क्रमशः एक टोली से बात दूसरी टोली में पहुँचती है। धीरे-धीरे सम्पूर्णनगर भवन में इसी बात की चरचा होने लगती है और वातावरण जैसे बहुत क्षुब्ध तथा गम्भीर हो जाता है।]

दृश्य ५

देश—*आशाद्वीप*
स्थान—*राजकीय उद्यान*
समय—*मध्याह्नपूर्व*

[फूलों से भरे एक कदम्ब की घनी छाया में राजकुमारी रेवा और युवराज यशोवर्मा बैठे हैं। चारों ओर सुगन्धित फूलों की बहार है। कहीं दूर पर कोयल बोल रही है। नीचे हरी-हरी घास है और उस पर राजकुमारी रेवा हरे रेशम की पोशाक धारण किए आधी-सी लेटी हुई है। उसके निकट ही युवराज यशोवर्मा बैठे हैं।]

रेवा : कुमार जनार्दन आज भी नौका-विहार करने गए हैं क्या ?

यशोवर्मा : उसे यह नया चाव न जाने किस तरह लग गया। नहीं तो इस तरह के आमोद-विनोद से उसे लगभग घृणा ही थी।

रेवा : इसमें हानि ही क्या है ? आपको नौका-विहार पसन्द नहीं है क्या ?

यशोवर्मा : मैं ? मुझे अब जीवन में जैसे किसी बात का शौक नहीं रहा।

रेवा : वह क्यों युवराज ?

यशोवर्मा : मै युवराज कहाँ हूँ राजकुमारी ! मैं तो एक अभागा युवक हूँ। घर से निकाला हुआ ! निस्सहाय ! पराजित ! मैं युवराज कहाँ हूँ।

रेवा : आप ! आप तो परमात्मा के दैवीय अंश हैं। विश्व के एक बड़े भाग को आपने सभ्यता का पाठ पढ़ाना है। आपको ये बातें क्या शोभा देती हैं युवराज ?

यशोवर्मा : मेरे जीवन की सभी महत्वाकांक्षाएँ न जाने कहां जाकर विलीन हो गई है। अब तो यह भी सपना-सा प्रतीत होता है कि मैं भी कभी एक योद्धा था। पुराना सभी कुछ जैसे भ्रांति था, छल था।

रेवा : और अब सत्य क्या प्रतीत है राजकुमार ?

यशोवर्मा : यही कि मैं एक अभागा नवयुवक हूँ। राह भटक-कर तुम्हारे इस स्वर्गदेश में आ पहुंचा हूँ और तुम ने अत्यन्त कृपापूर्वक मुझे अपने चरणों में आश्रय दिया है। वह बाज वाली कहानी तुमने सुनी है रेवा ?

रेवा : नहीं। मैंने नही सुनी। क्या है वह कहानी ?

यशोवर्मा : एक राजा के अत्यन्त सुन्दरी एक कन्या थी। वह कन्या जितनी सुन्दरी थी, उतनी ही गुणवती भी थी। राजा के और कोई सन्तान नहीं थी। उसने अपनी पुत्री का बड़े लाड़-प्यार से पालन किया, उसे अच्छी से अच्छी शिक्षा दी।

रेवा : फिर ?

यशोवर्मा : जब वह राजकन्या बड़ी हो गई, तब राजा को उसके विवाह की चिन्ता हुई। राजकुमारी के अनुपम सौन्दर्य की यशोगाथा दिग्-दिगन्त में व्याप्तहो चुकी थी।

इससे राजा के पास संसार भर के सभी देशों से विवाह के प्रस्ताव आने लगे। परन्तु राजा अपनी कन्या के लिए कन्या से भी अधिक श्रेष्ठ कोई वर चाहता था, इससे एक भी प्रस्ताव उसे पसन्द नहीं आया। और वह चिन्तित-सा रहने लगा।

रेवा : उसके बाद ?

यशोवर्मा : जब राजकुमारी को अपने पिता की इस उदासी का कारण मालूम हुआ, तब उसे बहुत हँसी आई। उसने राजा से कहा—"पिताजी, आप मेरे विवाह की चिन्ता ज़रा भी न करें।" राजा ने पूछा—"वह क्यों ?" राजकुमारी ने कहा—"मैंने बहुत समय से एक बाज़ पाल रखा है। मैंने निश्चय किया है कि कल प्रातःकाल उस बाज़ को छोड़ दूंगी। वह बाज़ जिस व्यक्ति के कंधे पर जा बैठेगा, उसी से मैं अपना विवाह कर लूँगी।" राजा ने कहा—"बहुत अच्छा। जैसी तुम्हारी इच्छा।"

रेवा : तब ?

यशोवर्मा : अगले दिन की प्रातः राजकुमारी ने जब उस बाज़ को छोड़ा तो वह ऊपर ही ऊपर उड़ता चला गया। राजधानी भर के सभी लोगों को राजकुमारी का निश्चय मालूम हो गया था, इससे वे सब के सब अपने मकानों की ऊंची-से ऊंची छतों पर जा खड़े हुए। इस आशा से कि न जाने किसके भाग्य खुल जाएँ। परन्तु जब लोगों ने देखा

वह बाज़ ऊपर ही ऊपर उड़ता चला जा रहा है, तो किसी को उसके वापस लौटकर आने की आशा ही न रही। परन्तु थोड़ी ही देर के बाद वह बाज़ बड़ी तेज़ी से नीचे उतरने लगा। समुद्र पार के किसी अन्य देश का एक गरीब युवक पैदल चलते-चलते थक गया था और राजधानी के निकट एक कूएं की जगत पर पैर लटकाए बैठा आराम कर रहा था। उसे इस बाज़ के सम्बन्ध में कुछ भी मालूम नहीं था। बाज़ तेज़ी से उतरा और उस युवक के कंधे पर जाकर बैठ गया।

रेवा : (बड़ी उत्सुकता से) उसके बाद ?

यशोवर्मा : उसके बाद क्या ? उसके बाद यही हुआ कि राजा के सिपाही उस विदेशी बटोही को पकड़कर राजा के पास ले गए और उसी दिन उसका विवाह राजकुमारी से कर दिया गया।

रेवा : खूब ! यदि आप सचमुच युवराज न होते तो इसी क्षण मैं आपसे अपना विवाह कर लेती।

[यशोवर्मा फीका-सा मुसकराकर चुप रह जाते हैं।]

रेवा : हां राजकुमार, तुम्हें ज्ञात है कि किस उद्देश्य से मैं तुम्हें आज यहां लाई हूँ ?

यशोवर्मा : किस उद्देश्य से ?

रेवा : मेरी प्रजा में धीरे-धीरे इस बात से असन्तोष उत्पन्न

हो रहा है कि मैं एक विदेशी राजकुमार को आशादीप में इतनी महत्ता दे रही हूँ।

यशोवर्मा : मुझे अभी तक यह कुछ भी मालूम नहीं।

रेवा : मैं यह जानती हूँ। परन्तु मकरन्द को इस सम्बन्ध में सभी कुछ ज्ञात है। उसके समान मेधावी युवक मैंने आज तक दूसरा नहीं देखा। मकरन्द मेरी प्रजा की इस भावना को ताड़ गया था। परन्तु मैंने ही उससे यह अनुरोध किया कि वह तुम से इस सम्बन्ध में कुछ भी न कहे।

यशोवर्मा : तो वे लोग चाहते क्या हैं ?

रेवा : वे लोग यही चाहते हैं कि तुम्हें आशादीप से वापस भेज दिया जाए।

यशोवर्मा : यह किस लिए ?

रेवा : (ज़रा-सा मुसकराकर) यह इसलिए कि उन्हें भय है कि मैं तुम से विवाह कर लेना चाहती हूँ।

यशोवर्मा : आज मुझे यहां लाने का क्या अभिप्राय है ?

रेवा : यही कि इसी समय प्रजाजन के कुछ प्रतिनिधि मुझसे मिलने आ रहे हैं और उनसे मिलते समय मैं तुम्हें अपने पास ही रखना चाहती थी।

यशोवर्मा : तो वे लोग कब तक आ रहे हैं ?

रेवा : वे लोग निकट ही मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। मैं अभी उन्हें बुलाती हूँ।

[रेवा ताली बजाती है। एक परिचारिका का प्रवेश]

परिचारिका : (प्रणाम करके) आज्ञा कीजिए।

रेवा : उन सज्जनों को यहां ले आओ।

परिचारिका : जो आज्ञा।

[प्रस्थान]

रेवा : देखो राजकुमार, मैं आशाद्वीप की रानी हूँ और इस तरह अपनी सम्पूर्ण प्रजा की माता हूँ। मैं नहीं चाहती कि अपनी किसी भी व्यक्तिगत इच्छा या स्वार्थ के लिए मैं अपनी प्रजा के चित्त को कष्ट पहुँचाऊँ।

यशोवर्मा : मै तुम्हारी बात नही समझा राजकुमारी।

रेवा : मेरा व्यक्तिगत स्वार्थ चाहे कुछ भी हो, परन्तु ग करूँगी वही, जो मेरी प्रजा चाहेगी।

[नागरिकों के पांच प्रतिनिधियों का प्रवेश। वे राजकुमारी को प्रणामकर चुपचाप सामने खड़े हो जाते हैं।]

रेवा : आप लोग सकुशल तो हैं ?

प्रमुख प्रतिनिधि : आपकी अनुकम्पा है महारानी।

रेवा : मैंने आप लोगों का आवेदन-पत्र पढ़ लिया है, प्रतिनिधि-गण। मैं जानना चाहती हूँ कि आप उस सम्बन्ध में मुझसे क्या आशा करते हैं।

प्र० प्रतिनिधि : धृष्टता क्षमा हो महारानी। हम लोग आपके दीन पुत्र हैं। परन्तु आप ही की कृपा से तो हम लोग यह सीखे हैं कि आशाद्वीप के गौरव की रक्षा करना हम

लोगों का परम कर्तव्य है । अपने गौरव के अतिरिक्त इस छोटे से द्वीप में, जिसमें ले-देकर केवल एक ही नगर है, हम लोगों के पास और रक्खा ही क्या है महारानी ।

रेवा : आशाद्वीप का वह गौरव क्या है ?

प्र० प्रति० : आपकी आज्ञा का पालन करना हम लोगों का सबसे बड़ा गौरव है । आप सब कुछ जानती ही हैं माता ।

रेवा : आप लोग निश्चिन्त होकर, जो चाहे कहिए । मैं अपना कर्तव्य जानना चाहती हूँ । मैं आपके मुँह से, अपनी प्रजा के मुँह से, अपना कर्तव्य सुनना चाहती हूँ । कहिए, क्या मैं अपने कर्तव्य से च्युत हो गई हूँ ?

प्र० प्रति० : जिस दिन हम लोग यहां तक सोचने की धृष्टता करेंगे, उस दिन आशाद्वीप का सम्पूर्ण गौरव नष्ट हो जाएगा । परन्तु हम लोग तो अत्यन्त नम्रतापूर्वक राजकीय गौरव की प्राचीन मर्यादाओं की ओर आपका ध्यान खींचना चाहते हैं ।

रेवा : ~~तो~~ क्या अतिथि-सत्कार आशाद्वीप के प्राचीन गौरव में सम्मिलित नहीं है ?

प्र० प्रति० : क्यों नहीं माता । परन्तु अतिथि को भी तो चाहिए कि वह अपने को अतिथि ही समझे ।

रेवा : मैं आपका इशारा समझ गई । राजकुमार यशोवर्मा एक सप्ताह के बाद इस द्वीप से विदा हो रहे हैं । वह स्वदेश को वापस जा रहे हैं । इतना समय भी वह यहां इसीलिए

ठहरे थे कि उन्हें अपने जहाज की मरम्मत करनी थी। मेरे अनुरोध पर वह कुछ अधिक दिनों तक ठहर गए तो इसमें भी आप लोगों को आपत्ति है प्रतिनिधिगण ?

प्र० प्र० : महारानी की जय हो ! तब हमें कुछ भी वक्तव्य नहीं है।

रेवा : तो आप लोग जा सकते हैं।

[सभी प्रतिनिधियों का प्रणाम करके प्रस्थान]

रेवा : (जरा भारी स्वर से) युवराज, आप स्वदेश वापस जाने की तैयारी कीजिए। आपका जीवन एक विशेष उद्देश्य के लिए बना है। आपकी अपनी महत्वाकांक्षाएं हैं। विश्व के अनेक द्वीपों को आप से बड़ी-बड़ी आशाएं हैं। जाइए, विश्व की आशाओं को पूरा कीजिए। एक मैं ही हूँ, जो व्यर्थ हूँ, जो अपदार्थ हूँ। जिसके जीवन का कोई उद्देश्य नहीं। मैं रानी हूँ, मैं आशाद्वीप की महारानी हूँ। आप जाइए राजकुमार।

यशोवर्मा : आप यह क्या कह रही हैं राजकुमारी ?

रेवा : मैं कहती हूँ, आप जाइए। आप तो राह भटककर ही इधर आ गए थे न। आगामी सप्ताह आप अपने देश के लिए प्रस्थान कर जाइए। आप चाहें जितना स्वर्ण और जितना अग्निचूर्ण मेरे भण्डार से साथ ले जाइए। परन्तु आप जाइए !

यशोवर्मा : राजकुमारी !

रेवा : (जरा उत्तेजित स्वर में) मैं एकान्त चाहती हूँ ! आप यहाँ से चले जाइए राजकुमार !

[अत्यन्त विस्मित होकर यशोवर्मा का प्रस्थान । रेवा उसी आसन से उसी जगह बैठी रहती है । यशोवर्मा की ओर वह आँख उठाकर भी नहीं देखती ।]

रेवा : (आप ही आप) जाओ राजकुमार, तुम अपने देश को लौट जाओ ! मेरे हृदय में जो तेज़ ज्वाला धधक रही है, उसका आभास भी तुम जान न पाओ । बाबा ने कहा था, उस जहाज़ पर मेरा दूल्हा आएगा । बाबा ने यह भी कहा था कि तुम परम्परागत बन्धनों की परवाह न करना । यह सब तो बाबा ने कहा । परन्तु उसने यह नहीं कहा कि तुम महारानी मत बनना । मैं आज रानी हूँ । आशाद्वीप के नागरिकों की माता हूँ । माता होकर मैं अपने पुत्रों से अपने हृदय की गहरी लालसा का जिक्र किस तरह करूँ ! स्वयं अपनी व्यक्तिगत इच्छा के लिए मैं उन्हें रूढ़ियों को ठुकराने की सलाह कैसे दूँ ! नहीं, मैं सभी कुछ सहन करूँगी । मैं रानी हूँ, नागरिकों की मां हूँ, उनकी माता बनकर रहूँगी । उनके लिए मैं अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का बलिदान कर दूँगी । तुम जाओ राजकुमार ! मेरे हृदय को समझे बिना तुम स्वदेश को वापस लौट जाओ !

[सहसा रेवा की आँखों में आंसू भर आते हैं ।]

चौथा अङ्क

दृश्य १

देश—*आशाद्वीप*

स्थान—*शिवमन्दिर के नीचे के राजकीय बन्दरगाह पर यशोवर्मा का जहाज़।*

समय—*प्रभात*

[जहाज़ पर लाल झण्डा फहरा रहा है। उसके सभी पाल बदल दिए गए हैं और मस्तूलों का भी जीर्णोद्धार कर दिया गया है। मांझियों को भी नई पोशाकें मिल गई हैं और आज स्वदेश की ओर वापस जाते हुए वे बहुत प्रसन्न दिखाई दे रहे हैं। मन्दिर में घंटानाद हो रहा है और महलों पर राजपताकाएं उड़ रही हैं। जहाज के उच्चतम भाग पर राजकुमारी रेवा और युवराज यशोवर्मा खड़े हैं। राजकुमारी ने आज काले रेशम की पोशाक पहन रक्खी है और यशोवर्मा

सैनिक वेश में हैं। दोनों के चेहरे बहुत उदास और गम्भीर-से दिखाई देते हैं।]

रेवा : ये पिछले दो मास मुझे आजीवन नहीं भूलेंगे !

यशोवर्मा : यह यात्रा मेरे जीवन की सबसे अधिक मधुर स्मृति बनकर रहेगी।

रेवा : तुम नहीं जानते राजकुमार, कि मैं कितने वर्षों से और कितनी व्याकुल उत्सुकता से तुम्हारी प्रतीक्षा करती रही हूँ।

यशोवर्मा : तुम बार-बार यह बात कहकर मुझे लज्जित क्यों करती हो रेवा ! मैं तुम्हारी तुलना में कितना तुच्छ और कितना अपदार्थ हूँ। मुझे स्मरण है वह रात, जब सप्ताहों तक आधापेट रहने और समुद्र के तूफान तथा मांझियों के विद्रोह का सामना करने के बाद, हम लोगों को तुम्हारे इस विशाल शिवमन्दिर के शिखर का निमन्त्रित करता हुआ प्रकाश दिखाई दिया था। हमें ज्ञात नहीं था कि यह कौन-सा प्रदेश है। यहां शत्रु रहते हैं या मित्र। फिर भी उसके बाद जैसे अचानक मैं स्वर्गलोक में आ पहुँचा। तब से अब तक की एक-एक घटना मेरे हृदय पर स्वर्णाक्षरों में अंकित है। तुम कल्पना भी नहीं कर सकतीं कि मेरे हृदय पर आज क्या कुछ नहीं बीत रहा है।

रेवा : हम लोग संसार से एकदम पृथक्, एकदम अपरिचित हैं। हम लोग सभ्यता को नहीं समझते, आपस के व्यवहार

को नहीं जानते । हमारी त्रुटियों को भुला देना युवराज !

(गला भर आता है ।)

यशोवर्मा : अगर तुम्हारी आँखों में एक भी आंसू आया तो मैं यहां से नहीं जाऊँगा । आजीवन यहीं बना रहूँगा । साम्राज्य-स्थापना के अपने सभी सपनों को भुलाकर मैं तुम्हारा दास बनकर रहूँगा । बोलो, बोलो, तुम मुझे क्या आदेश देती हो ? मुझे यहां रहने की अनुमति क्या तुम नहीं दे सकतीं राजकुमारी !

रेवा : नहीं । हर्गिज़ नहीं । तुम्हें जाना ही होगा । मैं आख़िर एक नारी हूँ, दुर्बल हूँ । मेरी दुर्बलता को क्षमा करो । तुम्हारा कर्तव्य तुम्हें पुकार रहा है । तुम्हें जाना ही होगा । तुम जाओ । तुम अभी जाओ !

[रेवा प्रणाम करके चल देती है । यशोवर्मा चुपचाप खड़ा रहता है । परन्तु दो-एक कदम आगे बढ़कर ही रेवा वापस लौट आती और यशोवर्मा के बहुत निकट आकर खड़ी हो जाती है । यशोवर्मा विस्मयाकुल दृष्टि से चुपचाप राजकुमारी के गम्भीर, शोकातुर चेहरे की ओर देखता रह जाता है ।]

रेवा : (धीरे से) मुझ से एक प्रतिज्ञा करो युवराज !

यशोवर्मा : कहो, मैं क्या प्रतिज्ञा करूँ ।

रेवा : मेरा हाथ पकड़कर वचन दो कि तुम एक बार और इस द्वीप में आओगे ।

यशोवर्मा : (कांपते हाथों से रेवा का हाथ पकड़कर) मैं पुनः इस द्वीप में आऊँगा ।

रेवा : बस, मुझे और कुछ नहीं चाहिए । मैं पुनः उत्सुकता से तुम्हारे आने की राह देखूँगी । आजीवन मैं तुम्हारी राह देखूँगी ।

[प्रणाम करके रेवा जहाज से नीचे उतर जाती है । जहाज धीरे-धीरे चलने लगता है । रेवा के साथ आशाद्वीप के प्रमुख नागरिक बन्दरगाह पर खड़े हैं और यशोवर्मा, जनार्दन और मकरन्द जहाज के ऊपर । जहाज धीरे-धीरे दूर होता जाता है ।]

दूसरा २

देश—*काम्बोज*
स्थान—*अंगकोरथोम में कृष्णवर्मा का विश्रामगृह*
समय—*मध्याह्नोत्तर*

[विश्रामगृह के चारों ओर परदे लटके हुए हैं । बीचोंबीच एक शुभ्र शय्या बिछी हुई है । काफ़ी गरमी पड़ रही है और कृष्णवर्मा अपनी शय्या पर, एक बड़े मसनद के सहारे सोया हुआ है । ऐसा प्रतीत होता है, जैसे

वह कोई भयंकर दुःस्वप्न देख रहा हो। उसके माथे पर पसीने की बूंदें चमक रही हैं और मुँह पर भय का भाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है। सहसा कृष्णवर्मा की नींद उचट जाती है और वह चौंककर उठ बैठता है।]

कृष्णवर्मा : (आप ही आप) तो आख़िर यह भी एक स्वप्न ही था ! मै बच गया ! परन्तु यह सब कितना सच, कितना वास्तविक और कितना वर्तमान प्रतीत होता था !...मेरी देह अभी तक थर-थर कांप रही है। ओह, मेरे जैसा साहसी, मेरे जैसा बेपरवाह भी एक सपने से इतना अधिक भयभीत हो सकता है ! मेरी सम्पूर्ण देह जैसे कांटों पर घसीटी जा रही थी और एक अत्यन्त शक्तिशाली पुरुष मेरी छाती पर दनादन चोटें कर रहा था। मैंने चाहा कि उस पुरुष को पकड़कर उसका गला दबा दूँ। परन्तु जब मैंने उसकी ओर देखा तो पहचाना कि वह यशोवर्मा था। ओह, यशोवर्मा ! मालूम नहीं, वह अब जीवित है या मर गया। फिर भी नालायक मुझे सपने में ही इतना अधिक डरा गया ! मैंने उसे धमकाना चाहा, परन्तु वह ज़ोर से हँस पड़ा। मैं घबरा गया, मेरा साहस नष्ट हो गया, और मैंने देखा कि यशोवर्मा का वह हास्य क्रमशः अट्टहास के रूप में परिणत हो गया है और उस अट्टहास में मेरे पिता, सेनापति श्रीदेव, कुमार जनार्दन और उसके बाद क्रमशः राजमहल के सम्पूर्ण अनुचर भी सम्मिलित होते चले जा रहे हैं। सारा विश्व ठहाका मारकर मुझ पर हँस रहा है, और उस

हास्य के सम्मुख मैं एकदम तुच्छ, एकदम अशक्त और एकदम नगण्य-सा व्यक्ति बन गया हूँ। उँह, यह सब कितना भयंकर था। अच्छा, अब उठकर ज़रा हाथ-मुँह तो धोलूं! (ऊँचे स्वर में) द्वारपाल!

[परन्तु कोई जवाब नहीं मिलता।]

कृष्णवर्मा : (ऊँची आवाज़ में) द्वारपाल! द्वारपाल!!

[फिर भी कोई आवाज़ नहीं आती।]

कृष्णवर्मा : (बहुत अधिक उत्तेजित होकर) द्वारपाल! गधे! सब किधर जाकर मर गए हैं!

[तब भी कोई जवाब नहीं मिलता। कृष्णवर्मा उछलकर अपना जूता पहन लेता है और निकट का परदा हटाकर द्वार की ओर बढ़ता है। कृष्णवर्मा द्वार को खोलना चाहता है, परन्तु द्वार नहीं खुलता। वह बाहर से बन्द है। कृष्णवर्मा के क्रोध का पारावार नहीं रहता। उसकी चिल्लाहट बन्द हो जाती है और लपककर वह अपनी तलवार उठा लेता है। इसके बाद वह कमरे का भारी-भारी सामान उठाकर दरवाज़े पर मारने लगता है। परन्तु वह मज़बूत दरवाज़ा तब भी नहीं टूटता। दरवाज़े पर होने वाले इस प्रहार से इतना ऊँचा कोलाहल उत्पन्न होता है कि कमरे की दीवारें तक भी कांप उठती हैं, परन्तु इस पर भी वहां कोई नहीं पहुँचता। चोट पर चोट देकर बड़ी कठिनता से कृष्णवर्मा दरवाजे का एक भाग तोड़ डालता है। इस छेद में से बड़ी सावधानता के साथ कृष्णवर्मा बाहर निकल आता है। कमरे के बाहर खुला सहन है, जिसमें सुन्दर-सी वाटिका लगी हुई है। कृष्णवर्मा बाहर आकर आवाज देता है।]

कृष्णवर्मा : माली ! शरीर-रक्षक !! कोई है ? सब कहाँ मर गए !

[परन्तु कहीं से कोई जवाब नही मिलता। कृष्णवर्मा भयभीत हो जाता है। वह समझ जाता है कि बहुत शीघ्र कोई भयंकर अनिष्ट आने की सम्भावना है। सहन ही में एक जगह रुककर बड़ी सतर्कता के साथ वह चारों ओर देखने लगता है।]

कृष्णवर्मा : मैं अब भी स्वप्न देख रहा हूँ क्या ? नहीं, यह तो स्वप्न नहीं है। स्वप्न तो वह था। यह प्रत्यक्ष तो उस स्वप्न से भी बढ़कर भयंकर हो सकता है। मैं जाग रहा हूँ। अभी-अभी मैने दरवाज़ा तोड़ा है। दरवाजे पर अनन्त पाद-प्रहार करने से मेरे पैरों में दर्द हो रहा है। यह मेरी तलवार है और मै अपने महल के सहन में खड़ा हूँ। नही-नहीं, यह स्वप्न नहीं है। यह तो अटल सत्य है। मैं जाग रहा हूँ, मैं देख रहा हूँ। परन्तु यह मामला क्या है ! महल भर का सभी सामान यथास्थान है। एक पत्ता तक भी किसी ने नहीं छूआ। फिर सभी लोग कहाँ जाकर मर गए। दो घड़ियों में ही यह प्रासाद भूतों के सुनसान महल-सा क्यों बन गया ! कुछ समझ में नहीं आता ?

[सहसा बहुत दूर से, एक बहुत ऊँची अश्रुतपूर्व-सी आवाज़ कृष्णवर्मा के कानों में पड़ती है, जैसे अचानक कोई पर्वत फट पड़ा हो। कृष्णवर्मा भयभीत हो जाता है। व्याकुल-सी दृष्टि से

वह पुनः चारों ओर देखता है। और तब अपने शस्त्र को मज़बूती से पकड़ कर वह महल की ऊंची छत पर चढ़ जाता है, जहाँ से बहुत दूर तक का दृश्य साफ-साफ़ दिखाई देता है। ऊपर पहुँचते ही जैसे उसकी आँखों के सामने से परदा हट जाता है। अत्यन्त विस्मित और उससे भी अधिक भयभीत होकर वह देखता है कि दक्षिण की ओर जहां राजकीय कारागार है, भयंकर आग लगी हुई है। कारागार का द्वार खुला पड़ा है और उसका एक भाग बिल्कुल नष्ट-सा हो गया है। द्वार के सम्मुख श्वेत घोड़ों पर कुछ भव्य-सी मूर्तियाँ सवार हैं और उन्हें घेरकर हजारों अगकोर निवासी एकत्र हैं। सहसा हजारों कंठों का अव्यक्त-सा स्वर कृष्णवर्मा के कानों में पड़ा—"महाराज यशोवर्मा चिरंजीवी हों!" और इसके बाद पुनः एक बार गोले छूटने का वही ऊँचा शब्द सुनाई देता है। इस शब्द से पहले भीड़ के निकट से आग की चमक दिखाई देती है और उसके बाद नीले रंग का गहरा धूआँ वहाँ से प्रभूत मात्रा में उठ खड़ा होता है।]

कृष्णवर्मा : यह क्या ! यशोवर्मा वापस लौट आया ! इतना अचानक ! और दो ही घड़ी में सम्पूर्ण अंगकोर थोम उसका अनुयायी बन गया। यह सब स्वप्न है या सत्य !

[इसी समय कृष्णवर्मा को दिखलाई देता है कि वे अश्वारोही और वह सम्पूर्ण भीड़ कारागार की ओर से महलो की ओर चली आ रही है। कारागार का एक भाग जल गया था और जनता को अब उस ओर विशेष दिलचस्पी नही रही। मालूम होता है उनका उद्देश्य पूरा हो गया था। भीड़ अब बड़ी तेज़ी से राजमहलों की ओर बढ़ी चली आ रही है।]

कृष्णवर्मा : लोग इधर आ रहे हैं। अब मेरी बारी है। ओह, यशोवर्मा के नाम में वह कौन-सा जादू है, जिसके कारण मेरे सभी अनुचर क्षणभर में मुझे छोड़कर उससे जा मिले। थोड़ी ही देर में इस क्रुद्ध जनता से मुझे सामना करना पड़ेगा। यहीं खड़ा रहूँ, या कहीं छिपकर जान बचाऊँ? महल में छिपने के अनेक स्थान हैं। परन्तु नहीं, मैं क़ायर नहीं हूँ। मैं भागूंगा नहीं। जो कुछ होगा, देखा जाएगा। इतने दिन पानी के ऊपर रहा हूँ, अब पानी के भीतर भी जाकर देखूं!

[देखते ही देखते राजमहल का आँगन अंगकोर थोम की जनता से भर जाता है। अधिकांश लोग निःशस्त्र हैं। कृष्णवर्मा महलों की छत पर चुपचाप खड़े रहकर यह दृश्य देख रहा है। भीड़ के लोग बहुत उत्तेजित होकर आपस में बातें कर रहे हैं।]

एक आदमी : युवराज का रूप अब कितना मनोहर हो गया है।

दूसरा आदमी : यह ऊँची आवाज़ करके फट पड़ने वाली चीज़ क्या है?

तीसरा आदमी : युवराज अब के अग्नि देवता पर विजय प्राप्त कर आए हैं। यह उसी का प्रसाद है।

चौथा आदमी : मालूम होता है, इसी काम के लिए युवराज इतने दिन अज्ञातवास करते रहे!

पाँचवाँ आदमी : चम्पा-वासियों ने भी इसी प्रकार अग्नि पर विजय स्थापित कर रक्खी है।

छठा आदमी : मैं चम्पा के युद्ध में युवराज की विशेष सेना में था। इन्हीं अग्निकाण्डों के कारण तो हम लोगों को वहां पराजित होना पड़ा था।

दूसरा आदमी : परन्तु भाई, यदि सभी लोग इसी प्रकार अग्नि पर विजय स्थापित करलें, तो संसार में जीवित रहना भी कठिन हो जाए।

छठा आदमी : वह कैसे ?

दूसरा आदमी : ज़रा किसी से छेड़छाड़ हुई नहीं कि झट से उसे भस्म कर दिया !

तीसरा आदमी : इस बहस को छोड़ो भाई। वह देखो, कृष्ण-वर्मा किस तरह अचल भाव से चुपचाप खड़ा है।

पहला आदमी : आदमी तो भाई, मानना पड़ेगा कि बहादुर है !

तीसरा आदमी : उँह, बहादुर किस काम का ! अब युवराज के सम्मुख अपनी वीरता दिखाए तो मानें।

[इसी समय दूर पर एक सफेद घोड़े पर सवार युवराज प्रवेश करते हैं। उनके पीछे-पीछे जनार्दन और सेनापति श्रीदेव हैं। सम्पूर्ण राजभवन "महाराज यशोवर्मा चिरंजीवी हों ! सेनापति श्रीदेव चिरंजीवी हों !" के गगनभेदी नारों से गूँज-सा उठता है। क्रमशः यशोवर्मा कृष्णवर्मा के निकट आ जाते हैं और ऊपर की ओर देखकर वह पुकारते हैं।]

कृष्णवर्मा : (आगे बढ़कर) क्या कहते हो युवराज ?

यशोवर्मा : ज़रा नीचे तो आओ भाई !

कृष्णवर्मा : अंगकोर थोम के सम्पूर्ण नागरिकों को साथ लेकर तुम मुझे नीचा दिखाने आए हो ? मेरा परिहास करने आए हो ? यह भी कोई वीरता है ?

यशोवर्मा : मैं तुम्हारा परिहास करने नहीं आया भाई, तुमसे मिलने आया हूँ।

कृष्णवर्मा : मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ यशोवर्मा ! तुम्हारा पलड़ा इस समय भारी है। परन्तु याद रक्खो, समय सदा एक समान नहीं रहता।

यशोवर्मा : बरसों तक दर-दर ठोकरें खाने के बाद भी यदि मैं यह तथ्य नहीं जानूंगा तो और कौन जानेगा ! मैं तुम्हारा उपहास करने नहीं आया भाई ! तुम मुझ पर विश्वास करो।

कृष्णवर्मा : तो इन लोगों को यहां से तुम भेज नहीं सकते ?

यशोवर्मा : मैंने इन्हें यहां नहीं बुलाया, बल्कि ये लोग ही मुझे यहां तक लाए हैं। ये नागरिक मेरा स्वागत न करते तो तुम्हारे राजकर्म्मचारी कभी मुझे यहाँ तक पहुँचने भी देते ? तुम राजा बनना चाहते थे, तो मुझसे कह देते। इस तरह प्रजा पर अत्याचार करने की, सेनापति को और अपने पूज्य पिता तक को जेल में डालने की तुम्हें क्या आवश्यकता थी ? मैं राजा बनना सचमुच नहीं

चाहता था। तब मैं खुशी से तुम्हें राजा बना देता और स्वयं तुम्हारे लिए आधा विश्व जीत लाता।

[इसी समय भीड़ में कुछ शोर होता है। एक वृद्ध सज्जन अत्यन्त अस्त-व्यस्त-सी दशा में भीड़ चीर कर बढ़ते चले आते हैं। युवराज उन्हें देखकर पुकारते हैं।]

यशोवर्मा : पितृव्य, आप किस जगह कैद थे? हम लोग तो आपके लिए कारागार का कोना-कोना तक खोज आए!

[वह वृद्ध सज्जन युवराज को कोई जवाब न देकर आगे बढ़ते हैं और निशाना साधकर एक छुरा कृष्णवर्मा की ओर फेंकते हैं। वह छुरा झुककर खड़े हुए कृष्णवर्मा की छाती पर जा लगता है और क्षणभर में पछाड़ खाकर कृष्णवर्मा का निर्जीव शरीर महल के आँगन में आ गिरता है।]

वृद्ध सज्जन : (बड़े आवेश में) पापिष्ट! अधम! जा, तू सदा के लिए जा! मैं समझ लूँगा कि मेरे सन्तान हुई ही नहीं। काम्बोज के इतिहास में कोई यह तो न कह सकेगा कि एक भाई ने अपने भाई के साथ वफ़ादारी का व्यवहार नहीं किया!

[अत्यन्त आवेश के कारण वृद्ध का सम्पूर्ण शरीर काँपने लगता है और बहुत शीघ्र वह मूर्छित होकर कृष्णवर्मा की देह पर गिर पड़ते हैं। मूर्छितावस्था में भी वह कृष्णवर्मा के रुधिरसिक्त सिर

को अपनी छाती से लगाकर धीरे-धीरे गुनगुनाते
हैं—"बेटा ! बेटा !" यशोवर्मा घोड़े से कूद
पडते हैं। एक हाथ से वह अपने चाचा को
संभालते है और दूसरे हाथ से कृष्ण-
वर्मा की जीर्ण-सी देह को। हजारो
नागरिकों की उस असंयत-सी
भीड मे गहरा सन्नाटा
व्याप्त हो जाता है।]

दृश्य ३

देश—*चम्पा*
स्थान—*अमरावती के बाहर यशोवर्मा का शैन्य शिविर*
समय—*मध्याह्न*

[शिविर में युवराज यशोवर्मा युद्ध के हथियारों से सज्जित हो रहे हैं। उनके निकट सेनापति श्रीदेव और कुमार जनार्दन खड़े हैं। दोनों युद्ध के शस्त्रो से भली प्रकार सुसज्जित हैं। बाहर युद्ध के बाजे बज रहे हैं। मालूम होता है, बहुत शीघ्र चढ़ाई की जाने वाली है।]

यशोवर्मा : चम्पा सचमुच जादूगरों का देश है जनार्दन ! इन लोगों का विश्वास था कि हमें कभी कोई त्रिकाल में भी विजय नहीं कर सकता।

जनादन : परन्तु आप तो चम्पा के अधिकांश साम्राज्य का विजय कर ही चुके हैं। अब तो केवल राजधानी ही बाकी है।

यशोवर्मा : इस सबके लिए हमें आशाद्वीप की राजकुमारी रेवा का कृतज्ञ होना चाहिए। उनकी सहायता न मिलती तो क्या कभी यह सम्भव था कि हम लोग चम्पा को विजय कर सकते !

जनार्दन : आप ठीक कहते हैं युवराज !

यशोवर्मा : राजकुमारी रेवा यदि मुझे अग्निचूर्ण का रहस्य न बता देतीं, तो शायद चम्पा पर आक्रमण करने का मुझे साहस ही न होता। चम्पा के पिछले युद्ध के बाद मेरा ख्याल हो गया था कि इस द्वीप के निवासियों ने अग्नि को सिद्ध कर रखा है। अग्नि-सिद्धि का यह रहस्य यदि हमें मालूम न हो जाता तो शायद आज भी हम लोग इसी तरह दर-दर की ठोकरें ही खा रहे होते !

जनार्दन : युद्ध के लिए सेना तैयार खड़ी है। सब लोग हमारी प्रतीक्षा में हैं। ज़रा शीघ्रता कीजिए न युवराज !

यशोवर्मा : बस, मैं तैयार हो गया। ऐसा प्रयत्न होना चाहिए, जिससे हमारी पिछले तीन वर्षों की साधना आज ही सफल हो जाए।

जनार्दन : युवराज तैयार हो गए सेनापति ! अब प्रयाण कर देना चाहिए ।

[युद्ध के वाद्यों से अत्यन्त उत्साहवर्धक स्वर निकलने लगते हैं । युवराज बाहर आते हैं । उनके एक ओर श्रीदेव हैं और दूसरी ओर जनार्दन । सभी सैनिक उन्हें एक साथ प्रणाम करते हैं । बाजा आगे चलता है और सैनिक उसका अनुसरण करते हैं ।]

दृश्यान्तर (१)

स्थान—युद्धभूमि
समय—अपराह्न

[युवराज यशोवर्मा अपने श्वेत घोड़े पर सवार हैं। उनके एक हाथ में एक बड़ा बरछा है, और दूसरे में ढाल । सिर पर शिरस्त्राण है और शरीर पर कवच । उनके चारों ओर घमासान युद्ध हो रहा है । दूर पर दोनों ओर फ़ौजी बाजे बज रहे हैं । शस्त्रों की झंकार और वीरों की हुंकार से कानों के परदे फटे जाते हैं । युवराज बिजली की तेज़ी से अपना बरछा चला रहे हैं । सहसा उनकी दृष्टि, माथे पर सोने का किरीट धारण किए चम्पाधिपति पर पड़ती है, जो एक हाथी पर सवार होकर उधर ही बढ़ा आ रहा है ।]

चम्पाधिपति : (दूर ही से ललकारकर) मुझ पर अपनी शूर-वीरता दिखाओ यशोवर्मा !

यशोवर्मा : आप कौन हैं ?

चम्पाधिपति : तुम्हारा काल !

यशोवर्मा : मेरे काल का नाम यदि मुझे मालूम हो जाए, तो -•उससे निबटकर मैं आज ही सदा के लिए अमर हो जाऊँ !

[आसपास युद्ध रुक जाता है। दोनों ओर के वीर अपने नायकों का जला-कटा वार्तालाप सुनने लगते हैं।]

चम्पा० : डाकू ! लुटेरे ! मेरे देश में आकर मुझ से इस तरह तानेज़नी की बातें करते तुम्हें लज्जा नहीं आती ?

यशोवर्मा : इसमें डाकूपन की बात ही क्या है ? सभ्यता के प्रसार के लिए साम्राज्य निर्माण का कार्य तो वीरता का कार्य है।

चम्पा० : विभिन्न द्वीपों की स्वाधीनता का नाश कर तुम संस्कृति और सभ्यता का प्रसार करना चाहते हो ! बहुत खूब !

यशोवर्मा : इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है !

चम्पा : युद्धभूमि में यह बहस रहने दो यशोवर्मा। आज तुम्हें अपने किए का फल मिल जाएगा !

[इसी समय सेनापति श्रीदेव की निगाह चम्पाधिपति पर पड़ती है। उन्हें दिखाई देता है कि चम्पाधिपति युवराज यशोवर्मा से बात करते-करते दाहिने हाथ की उंगलियों से एक छोटे-से तीर

पर जैसे किसी चीज़ का लेप करते जा रहे हैं। उन्हें
यह तो समझ में नहीं आता कि चम्पाधिपति
के इस कार्य का अभिप्राय क्या है। फिर
भी वह आगे बढ़कर युवराज के
एकदम निकट आकर खड़े
हो जाते हैं ।]

यशोवर्मा : अच्छा राजन्, आप मुझसे द्वन्द युद्ध करना चाहते हैं या इसी प्रकार खुले युद्ध में अस्त्रप्रहार ? मैं दोनों के लिए तैयार हूँ !

चम्पा० : मुझे भी दोनों ही स्वीकार हैं। जिस चीज़ को तुम पसन्द करो यशोवर्मा ! अच्छा यशोवर्मा, तुम्हें अपने जीवन से बहुत अधिक मोह तो नहीं है न ?

यशोवर्मा : जीवन से मोह तो मुझे सचमुच है, परन्तु……

[यशोवर्मा अभी अपनी बात पूरी नहीं कर पाते कि चम्पाधिपति बिजली की तेजी से वह तीर-सा बिना प्रत्यंचा पर चढ़ाये उनकी ओर फेंकते हैं। उसी क्षण, बड़ी फुर्ती से सेनापति श्रीदेव युवराज और चम्पाधिपति के बीच, बल्कि युवराज के एकदम निकट, कूद आते हैं। क्षण-भर की भी देर नहीं होती और तीर श्रीदेव जी की छाती से जा टकराता है। वज्रघोष-सी आवाज़ होती है, धुआँ निकलता है और तत्क्षण श्रीदेव का निर्जीव शरीर भूमि पर गिर जाता है। इस बीच में युवराज भी संभलकर पूरी शक्ति के साथ अपना बरछा चम्पाधिपति पर फेंकते हैं। बरछा चम्पाधिपति की गरदन में जाकर लगता है और वह भी निर्जीव होकर हाथी से नीचे लुढ़क

जाते हैं। इसके बाद युवराज घोड़े से कूद पड़ते हैं और श्रीदेव के निर्जीव शरीर को अपनी गोद में उठा लेते हैं। उनकी आँखों में आँसू भर आए हैं। बहुत ही करुण स्वर में वह कहते हैं।]

युवराज : श्रीदेव ! मेरे मित्र ! मेरे भाई !

[युद्ध समाप्त हो जाता है।]

दृश्यान्तर (२)

स्थान—*युद्धभूमि में काम्बोज के सैन्य शिविर।*
समय—*सन्ध्या*

[काम्बोज की सम्पूर्ण सेना पंक्तिबद्ध होकर खड़ी है। बीच में लाल झंडे से ढका हुआ सेनापति श्रीदेव का शव पड़ा है। शव के निकट युवराज यशोवर्मा और कुमार जनार्दन नंगे सिर और नंगे पाँव खड़े हैं। दोनों की आँखों में आँसू भरे हैं। सैनिक वाद्यों से बहुत ही करुण-ध्वनि निकल रही है। सम्पूर्ण सेना-नायक बारी-बारी से पुष्पमालाएँ सेनापति के शव पर चढ़ा रहे हैं। सब से अन्त में युवराज यशोवर्मा एक पुष्प-माला लेकर शव के एकदम निकट पहुँचते हैं। एक व्यक्ति शव के मुँह पर से कपड़ा हटा देता है। यशोवर्मा आँखों में आँसू भरकर कहते हैं।]

यशोवर्मा : मित्र ! भाई ! जाओ, अपने यत्न से अर्जित किए हुए स्वर्गलोक को जाओ ! आजीवन तुमने मेरा साथ दिया।

सदा तुम मुझसे आगे रहे और अन्तिम समय में भी तुम मुझसे बाजी ले गए। मेरी बजाय तुमने अपना जीवन दे दिया ! जाओ, काम्बोज साम्राज्य के सब से महान् वीर, अब अनन्त विश्राम के लिए जाओ। आर्य-साम्राज्यों के इतिहास में तुम्हारा नाम सदा स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा। काम्बोज की माताएँ अपने बच्चों को तुम्हारी वीर गाथाएं सुनाती रहेंगी और जब तक काम्बोज का नाम भी रहेगा, तुम्हारी यशोगाथा लुप्त नहीं होगी !

[युवराज वह माला श्रीदेव के कण्ठ में पहना देते हैं। शव का मुंह ढंक दिया जाता है और तब सम्पूर्ण सेना एक साथ सैनिक ढंग से सेनापति का अन्तिम अभिवादन करती है। युवराज जनार्दन तथा दो सेना-नायक कन्धा उठाकर शव उठा लेते हैं और अर्थी का सैनिक जुलूस धीरे-धीरे बढ़ने लगता है।]

दृश्य ४

देश—*कुमारी द्वीप*
स्थान—*बन्दरगाह के प्राचीन प्रासाद*
समय—*मध्याह्न पूर्व*

(ऋषि पुंडरीक और राजकुमारी इन्दिरा एक जगह खड़े होकर हिन्दू शैली पर बने प्राचीन महलों को देख रहे हैं।)

पुण्डरीक : तुम्हें अपने भाई, अपने पिता और अपने देश की याद नहीं आती ?

इन्दिरा : याद क्यों नहीं आती ! अपने जीवन में पहली बार मैं घर छोड़कर बाहर आई हूँ। मुझे घर की याद क्यों न आएगी। परन्तु वह याद मुझे पीड़ा नहीं पहुँचाती। नए-नए देश, नए-नए दृश्य देखने को मिलते हैं। यह कुछ कम आकर्षण तो नहीं। और फिर मुझे अवश्य ही पुनः स्वदेश को लौट जाना है। यहां तो सिर्फ़ एक ही कार्य के लिए मैं तुम्हारे साथ आई हूँ न दादा !

पुण्डरीक : परन्तु कौन जानता है कि वह कार्य कब जाकर समाप्त होगा। तीन महीनों की यात्रा के बाद हम लोग अपने लक्ष्य-स्थान पर पहुँचेंगे। उसके बाद जाने कितना समय हमें अपनी कार्यसिद्धि में लगेगा। चम्पा साम्राज्य की विजय सहल कार्य नहीं है बेटी ! और यह भी मालूम नहीं कि पिछले चार बरसों में यशोवर्मा का क्या हाल हुआ है।

इन्दिरा : पिछले वर्ष हमें जो समाचार मिले थे, वे तो कुछ विशेष निराशाजनक नहीं थे। और अब तो हम लोग वहां जा ही रहे हैं। एक बार यशोवर्मा को तुम अग्निचूर्ण बनाने का उपाय बता दो। फिर देखना, वह कितना शीघ्र चम्पा-विजय करते हैं।

पुण्डरीक : युद्ध ! नरहिंसा ! रुधिर-प्रवाह !—ये सब कितनी घृणित बातें हैं ! और तुम्हारे कहने से मैं इन कार्यों में ही भाग लेने हजारों कोसों से दौड़ा आ रहा हूँ। अग्निचूर्ण बनाने की जो विधि अभी तक भारतवर्ष में भी एक अज्ञात रहस्य है, एक विदेशी युवराज को मैं उसकी शिक्षा देने चला हूँ !

इन्दिरा : आप पर कायरता का यह आक्रमण बार-बार क्यों हो जाता है दादा ? निराशामयी इन बातों को जाने दीजिए। देखिए, हमारे देश से हजारों कोस दूर, इस कुमारी द्वीप में आर्य भवन निर्माण-कला के ये प्राचीन मन्दिर कितने सुन्दर प्रतीत होते हैं ! वह सामने का मेहराबदार ऊँचा गुम्बद देखा आपने ? जैसे पर्वत की एक बड़ी शिला को काटकर इस गुम्बद का निर्माण किया गया हो !

पुण्डरीक : कुछ समय हुआ, भारतवर्ष से एक नवीन भवन निर्माता शिल्पी काम्बोज पहुँचा था। वह कहता था कि हमारे देश में इस तरह के ऊँचे गुम्बद अब बहुत पसन्द

नहीं किए जाते। काम्बोज निवासियों को यह लहरदार, चौड़े गुम्बद बनाना सिखा रहा है। ये गुम्बद सचमुच बहुत ही सुन्दर दिखाई देते हैं राजकुमारी !

इन्दिरा : वह भवन-निर्माता देखने में कैसा है ?

पुण्डरीक : गौरवर्ण, ऊँचा कद, मुसकराता हुआ चेहरा, बलिष्ठ देह।

इन्दिरा : ओह, मैं उसे जानती हूँ। उसका नाम गोविन्द है। वह मुझसे मिलकर ही इधर आया था। अच्छा दादा, अब हमें वापस लौटना चाहिए। आज सायंकाल ही जहाज छूट जाना है। कहीं हमें विलम्ब न हो जाए।

पुण्डरीक : बहुत अच्छा बेटी !

[वे लोग वापस लौटने ही लगते हैं कि मकरन्द का प्रवेश। अचानक इन्दिरा की निगाह मकरन्द पर पड़ती है। वह खुशी से भरकर चिल्ला उठती है।]

इन्दिरा : मकरन्द ! ओह, तुम यहाँ कहाँ भाई मकरन्द !

मकरन्द : (चकित होकर राजकुमारी की ओर देखता है और उसके बाद दौड़कर उसके निकट पहुँचता है) ओह, राजकुमारी ! आप यहां कहां ? क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ !

इन्दिरा : नहीं मकरन्द ! मैं भी आखिर तुम लोगों के पीछे-पीछे यहां आ पहुँची ! बहुत दिनों के बाद आज विदेश में अपने एक नगरबन्धु को देखकर मुझे जो प्रसन्नता हुई है, उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते मकरन्द ! (आँखों में आंसू छलछला आते हैं।)

मकरन्द : यह मेरा अहोभाग्य है कि आज मुझे पुनः आपके दर्शन हुए । साम्राज्य में सब कुशल तो हैं राजकुमारी !

इन्दिरा : सब कुशल हैं । पिता जी वृद्ध हो गए हैं, परन्तु भाई परान्तिक अब बड़ा समझदार और नीतिज्ञ हो गया है। वह कहता है कि चोल राज्य को भारतवर्ष का सब से अधिक शक्तिशाली साम्राज्य बनाना मेरे जीवन का उद्देश्य है । हमारे वंश में फिर से यह साम्राज्य-विजय की लालसा न जाने कहां से आ उत्पन्न हुई ! तुम यहां क्या करने आए थे मकरन्द ? स्वदेश को वापस जा रहे हो क्या भाई ?

मकरन्द : नहीं राजकुमारी, मैं तो तभी से इसी द्वीप में आकर बस गया हूँ । कुमारीद्वीप इस ओर के व्यापार का सब से बड़ा केन्द्र है, इससे बहुत शीघ्र मेरा व्यापार चमक गया। यह सब आप ही की कृपा का फल है राजकुमारी !

इन्दिरा : बहुत खूब ! मैं बहुत प्रसन्न हुई ! ओह, मकरन्द तुम कितने अच्छे हो !

मकरन्द : क्या आप मेरे घर को पवित्र नहीं करेंगी राजकुमारी ?

इन्दिरा : नहीं भाई, मुझे चम्पा के लिए प्रस्थान कर देना है । आज प्रातःकाल ही मैं यहाँ पहुँची थी और अब थोड़ी ही देर में जहाज जाने वाला है ।

मकरन्द : आपके अनुचर आदि कहाँ हैं ?

इन्दिरा : मैं किसी को अपने साथ नहीं लाई । सिर्फ (पुण्डरीक

की ओर इशारा कर) इन्हीं दादा के साथ चली आई।

[मकरन्द चकित होकर श्रद्धाभाव से पुण्डरीक की ओर देखता है।]

इन्दिरा : तुम दादा को नहीं जानते मकरन्द ! इन सभी द्वीपों में वह ऋषि पुण्डरीक नाम से प्रसिद्ध हैं।

मकरन्द : (घुटने टेक कर आचार्य पुण्डरीक को प्रणाम करने के बाद) मेरा जीवन आज धन्य हुआ। राजकुमार यशोवर्मा से मैंने बहुत बार आपका जिक्र सुना है।

इन्दिरा : क्या कहा, राजकुमार यशोवर्मा !

पुण्डरीक : तुम यशोवर्मा को जानते हो युवक ?

मकरन्द : मैं उन्हें खूब अच्छी तरह जानता हूँ दादा! वह मेरे परम बन्धु हैं।

इन्दिरा : हम लोग उन्हीं से मिलने के लिए तो चम्पा जा रहे हैं। उन्हीं की सहायता के लिए !

[पुण्डरीक अर्थपूर्ण दृष्टि से इन्दिरा की ओर देखते हैं, जैसे वह उससे कहना चाहते हैं कि इतने रहस्य की बात वह यों ही सब किसी पर प्रकट न करे।]

मकरन्द : आपका अब चम्पा जाना व्यर्थ है राजकुमारी ! कल सायंकाल ही समाचार मिला है कि युवराज यशोवर्मा ने चम्पा-साम्राज्य को विजय कर लिया है और अब बहुत शीघ्र वह काम्बोज को वापस जा रहे हैं।

पुण्डरीक : यह सब क्या ठीक समाचार हैं युवक ?

मकरन्द : जी हां आचार्य ! मुझे मालूम है कि आप युवराज के

गुरु हैं। युवराज के गुरु के सम्मुख मैं कोई अनिश्चित या सुनी-सुनाई बात कभी नहीं कह सकता।

इन्दिरा : यह कितनी खुशी का समाचार है दादा !

मकरन्द : परन्तु युवराज को चम्पा की वह विजय बहुत महँगी पड़ी है। इस विजय में उन्हें अपने बचपन के अनन्यतम मित्र और वीर सेनापति श्रीदेव की बलि देनी पड़ी है।

पुण्डरीक : तो क्या श्रीदेव अब इस संसार में नही है !

[पुण्डरीक अपने सिर को थामकर वही बैठ जाते हैं।]

इन्दिरा : आपको क्या हुआ दादा ?

पुण्डरीक : मैं अब ठीक हूँ बेटी, तुम कुछ चिन्ता न करो। यों ही कुछ चक्कर-सा आ गया था।

मकरन्द : आप मेरे यहाँ चलने की कृपा कीजिए राजकुमारी। अब आप चम्पा जाकर क्या करेंगी। अभी बहुत-सी बातें हैं, जो आचार्य पुण्डरीक मुझ से पूछना चाहेगे।

पुण्डरीक : मुझे सहारा दो मकरन्द ! हम लोग अवश्य ही तुम्हारे घर पर चलेंगे।

[मकरन्द और इन्दिरा सहारा देकर पुण्डरीक को खड़ा करते है और उन दोनों के कन्धों का आसरा लेकर पुण्डरीक धीरे-धीरे चलने लगते हैं।]

दृश्य ५

देश—*काम्बोज*
स्थान—*अंगकोरथोम के राजमहल*
समय—*प्रातः*

[सम्पूर्ण नगर को बन्दनवार, तोरण और पताकाओं से सजाया गया है । राजमहलों के सम्मुख एक बड़े उद्यान में वसन्ती रंग का एक बहुत बड़ा चन्दोआ तना हुआ है । इस चन्दोए को फूल-पत्तियों से खूब सजा दिया गया है । महलों पर ध्वजा, पताका आदि फहरा रही हैं । चन्दोए के नीचे एक ऊँचे आसन पर कश्मीर से आए कीमती गलीचे बिछे हैं । इन गलीचों पर रत्न-जटित एक चमकता हुआ राजसिंहासन रखा है । सिंहासन के सम्मुख अनेक उपवेशन पड़े हैं, और इन उपवेशनों पर साम्राज्य के प्रमुख कर्मचारी तथा गण्यमान्य नागरिक बैठे हैं । सिंहासन के पीछे सेनापति श्रीदेव का विशाल तैल-चित्र रखा हुआ है । सब लोग राजतिलक के मुहूर्त की प्रतीक्षा में हैं । बाहर वैतालिक गा रहे हैं ।]

गीत

ऊषा ने आँगन लीप दिया !
नव किरणों ने चौक पूर कर मंगल कलश लिया ।
कर्मवीर वर उठो, द्विजों ने मन्त्रोच्चार किया ।
कीर्ति-वधू के कर-ग्रहण से हुलसे आज हिया ।।
ऊषा ने आंगन लीप दिया !

गीतकार : मैथिलीशरण गुप्त

[राजकीय वाद्ययन्त्र अत्यन्त मधुर मंगल स्वर निकालने लगते हैं और
इस संगीतमय वातावरण में राजवेश धारण किए युवराज यशोवर्मा,
उनके पितृव्य तथा कुमार जनार्दन राजसभा में प्रवेश करते हैं ।
सम्पूर्ण सभासद खड़े होकर उन्हें प्रणाम करते हैं । यशोवर्मा
राजसिंहासन पर बैठते है, उनके पितृव्य उनके
दाहिनी ओर और कुमार जनार्दन बाईं ओर ।
सबसे पूर्व पुरोहितजन वेदमन्त्रों का
उच्चारण करते हैं और उस
के बाद यशोवर्मा के पितृव्य
भाषण देने खड़े
होते है ।]

पितृव्य : नागरिको, मुझे बताओ, काम्बोज का वह हृदय-सम्राट् कौन है, जिसकी महिमा के गीत आज विश्व-भर में गाए जा रहे हैं ?

नागरिक : युवराज यशोवर्मा !

पितृव्य : वह कौन-सा लोकोत्तर पुरुष है, जिसके सामने काम्बोज के आसपास का एक भी द्वीप अपना सिर ऊँचा उठाकर नहीं रख सका ? जिसका मार्ग पर्वत नहीं रोक सके ? अनन्त जलनिधि की उत्तुंग तरंगे भी जिसकी प्रगति में बाधा नहीं पहुँचा सकीं, वह दुर्जेय वीर कौन है ?

नागरिक : युवराज यशोवर्मा !

पितृव्य : वह कौन है, जिसने विश्व के इस भाग में आर्य-सभ्यता का पाठ मनुष्यमात्र को पढ़ाया है ? जो स्वयं

महा विद्वान है, कवि है, और सबसे बढ़कर आदर्श मनुष्य है ?

नागरिक : युवराज यशोवर्मा !

पितृव्य : वह कौन नरवीर है, जो बिना शस्त्र लिए भूखे शेर को पराजित कर सकता है ? जिसका तेज विश्वभर के सभी प्राणियों के लिए असह्य है ?

नागरिक : युवराज यशोवर्मा !

पितृव्य : बहुत ठीक ! मेरे जीवन का उद्देश्य आज सफल हुआ। इसी दिन की प्रतीक्षा में मैं आज तक जीवित था। अपने तथा सम्पूर्ण काम्बोज के परम प्रिय युवराज यशोवर्मा के सिर पर राजमुकुट रखकर मैं आज कृतकृत्य होता हूँ। नागरिको, इस शुभ मुहूर्त के उपलक्ष्य में मैं घोषित करता हूँ कि भविष्य में अंगकोरथोम को यशोधरपुर कहकर याद किया जाए ।

[इसके बाद बूढे पितृव्य कांपते हाथों से राज-मुकुट उठाकर यशोवर्मा के सिर पर रखते हैं। राजप्रासाद का सम्पूर्ण आंगन "सम्राट् यशोवर्मा चिरजीवी हों !" के गगनभेदी नाद से थर्रा उठता है। तदनन्तर सभी सभासद अपनी भेंटें नवीन सम्राट के सम्मुख उपस्थित करते हैं। वैतालिक पुनः मंगलगान करते हैं और उसके बाद सम्राट को जरा अवकाश मिलता है ।]

यशोवर्मा : (जनार्दन से) दो-एक प्रियजनों की अनुपस्थिति इस उत्सव को फीका बना रही है प्रधानमन्त्री !

जनार्दन : किन-किन प्रियजनों की अनुपस्थिति सम्राट् ?

यशोवर्मा : सेनापति श्रीदेव, ऋषि पुण्डरीक, श्रेष्ठी मकरन्द और-और.........

जनार्दन : आप कहते-कहते रुक क्यों गए सम्राट् ?

यशोवर्मा : नहीं, वह एक ऐसी बात थी, जो असम्भव है। आशाद्वीप की महारानी राजकुमारी रेवा ! न वह कभी अपने द्वीप से बाहर जा सकती हैं और न कभी कोई बाहर का व्यक्ति आशाद्वीप में स्थिररूप से रहने दिया जा सकता है। परन्तु मेरा रोम-रोम अनुभव करता है कि मेरा यह सम्पूर्ण साम्राज्य राजकुमारी रेवा की ही कृपा का फल है।

जनार्दन : आप बिल्कुल ठीक कहते हैं सम्राट्।

[मंगलगान समाप्त हो जाता है।]

पितृव्य : सम्राट्, राजधानी के सम्पूर्ण नागरिक आपका स्वागत करने के लिए उत्सुक हो रहे हैं। समय हो गया है। सम्राट् आज के ऐतिहासिक दिन के इस जलूस का नेतृत्व करें, जो यशोधरपुर के इतिहास का सबसे बड़ा जलूस होगा।

यशोवर्मा : बहुत अच्छा पितृव्य !

[यशोवर्मा उठकर खड़े हो जाते हैं और उनके साथ-साथ सम्पूर्ण सभासद भी उठ खड़े होते हैं। अभी सब लोग अपने स्थानों पर ही होते हैं कि एकाएक सभा-मण्डप में ऋषि पुण्डरीक और राजकुमारी इन्दिरा प्रवेश करते हैं। वे चोबदार

को भी अपने आने की सूचना पहुँचाने का अवसर नहीं देते। सम्राट आगे बढ़कर पुण्डरीक की चरण-वन्दना करते हैं और तब सम्पूर्ण सभासद भी अपना सिर झुका देते हैं।]

पुण्डरीक : तुम यशस्वी बनो पुत्र ! आज इस अवसर पर पहुँचकर मुझे हार्दिक आनन्द और शान्ति का अनुभव हो रहा है। मनुष्य अपने जीवन में जो सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा कर सकता है, उसे तुमने प्राप्त कर लिया यशोवर्मा !

यशोवर्मा : यह सब आप ही के आशीर्वाद का परिणाम है आचार्यवर !

पुण्डरीक : और यशोवर्मा ! मेरी इस काम्बोज-यात्रा का सारा श्रेय (इन्दिरा की ओर इशारा कर) चोल साम्राज्य की महाराजकुमारी इन्दिरा को है।

[यशोवर्मा इन्दिरा को प्रणाम करते हैं।]

पुण्डरीक : (मुस्कराकर) चम्पा के युद्ध में तुम्हारी सहायता करने के उद्देश्य से राजकुमारी आग्रह करके यहां तक आई हैं।

[इन्दिरा का चेहरा लज्जा से रक्तवर्ण हो जाता है।]

यशोवर्मा : यह महाराजकुमारी की असीम अनुकम्पा है। भारतवर्ष के जगत्प्रसिद्ध चोलवंश की महाराजकुमारी इन्दिरा हम लोगों के देश में ! वह भी आज के दिन ! यह

मेरा महान सौभाग्य है ! यह सम्पूर्ण कम्बोज का महान सौभाग्य है !

पुण्डरीक : यही वह राजकुमारी हैं, जिनकी प्रेरणा से पिछले अनेक वर्षों में आर्यावर्त के अनेक वीतराग ब्राह्मण, जगत्प्रसिद्ध विद्वान, धुरन्धर वक्ता, प्रवीण शिल्पी और सम्पन्न व्यापारी इन द्वीपों में आते रहे हैं। अपनी इस राजधानी में जिस संसारप्रसिद्ध शिल्पी गोविन्द की देख-रेख में तुम उस भव्य शिव-मन्दिर का निर्माण करवा रहे हो, उस शिल्पी को भी राजकुमारी इन्दिरा ने ही इस द्वीप में भेजा था। मकरन्द को तो तुम जानते ही हो, वह भी राजकुमारी का ही अनुगत है।

यशोवर्मा : यशोधरपुर का यह महान सौभाग्य है कि राजकुमारी आज स्वयं एक तीर्थयात्री के वेश में इस तुच्छ नगरी में पधारी हैं। (नागरिकों से जरा ऊँची आवाज़ में) सभासदो, आज का दिन हमारे देश के लिए अत्यन्त गौरव का दिन है। जगत्प्रसिद्ध भारतीय चोलवंश की महाराजकुमारी स्वयं आज हमारी मेहमान बनी हैं। हर्ष मनाओ, नागरिको !

[सम्पूर्ण सभासद हर्षध्वनि करते हैं। राजकुमारी इन्दिरा अभिभूत-सी होकर उसी जगह चुपचाप खड़ी रहती हैं।]

यशोवर्मा : हमारा यह महान सौभाग्य होगा महाराजकुमारी, यदि आज आप भी राज्याभिषेक के इस जलूस में सम्मिलित हो सकें।

इन्दिरा : मुझे क्षमा कीजिए सम्राट्, मैं बहुत थक गई हूँ।

पुण्डरीक : महाराजकुमारी को विश्राम करने दो यशोवर्मा ! राज्याभिषेक के कार्यक्रम में किसी तरह की बाधा नहीं पड़नी चाहिए।

यशोवर्मा : जैसी आपकी आज्ञा। (एक शरीर-रक्षक से) महाराजकुमारी को अन्तपुरः में ले जाओ।

शरीर-रक्षक : जो आज्ञा।

[शरीर-रक्षक राजकुमारी इन्दिरा के पीछे, कुछ दूरी पर खड़ा हो जाता है। सम्राट् यशोवर्मा आगे बढ़ते हैं, उनके पीछे ऋषि पुण्डरीक और वृद्ध पितृव्य। तब जनार्दन और उनके बाद अन्य सभासद। सभी लोग क्रमशः मण्डप से बाहर चले जाते हैं। मण्डप में सन्नाटा छा जाता है। चर राजकुमारी को मार्ग निर्देश करता है, परन्तु राजकुमारी अपनी जगह पर खड़ी रहती है। तब वह उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा में द्वार के निकट जा खड़ा होता है। मण्डप के बाहर से नागरिकों की जो हर्षध्वनियां वहां बड़ी उग्रता के साथ सुनाई दे रही हैं, वे क्रमशः दूर-दूर होती चली जाती हैं।]

इन्दिरा : (आप ही आप) कितना अद्भुत आकर्षण है ! कितनी बलिष्ठ देह है ! और उस पर भी आँखों में कितनी विशुद्ध पवित्रता है । जैसे कोई देवप्रतिमा हो । मेरी यह सम्पूर्ण यात्रा, राह के सम्पूर्ण कष्ट आज सार्थक हो गए ।

[क्षण भर की चुप्पी के बाद]

इन्दिरा : द्वारपाल ।

शरीररक्षक : आज्ञा कीजिए ।

इन्दिरा : मुझे मार्ग दिखलाओ ।

शरीररक्षक : इधर से आइए राजकुमारी ।

[शरीररक्षक के पीछे-पीछे इन्दिरा का प्रस्थान ।]

पांचवां अङ्क

दृश्य १

देश—*आशाद्वीप*
स्थान—*समुद्र बीच का शिव-मन्दिर*
समय—*मध्याह्नपूर्व*

[मन्दिर के बाहर राजकुमारी रेवा अकेली बैठी है। समुद्र शान्त है। सभी ओर निस्तब्धता है। आशाद्वीप की ओर रेवा की पीठ है और खुले समुद्र की ओर मुँह। समुद्र से बहुत ऊंचाई पर अनेक पक्षी उड़ रहे हैं, रेवा की जहां तक दृष्टि जा सकती है, वहां तक इन पक्षियों के अतिरिक्त अन्य कोई जीवधारी नहीं है।]

रेवा : मेरा यह स्वर्गसम छोटा-सा द्वीप आज मुझे एक कारागार के समान जान पड़ता है। पहाड़ी की चोटी पर स्थित

इस मन्दिर के सहन में खड़े होकर मैं सारे द्वीप को देख सकती हूँ। इस विशाल, अपार और अगाध समुद्र की तुलना में यह द्वीप कितना तुच्छ-सा, नगण्य-सा प्रतीत होता है। हम लोग विश्व भर से पृथक हैं, संसार से कहीं और किसी तरह का हमारा सम्बन्ध नहीं। अपनी दृष्टि में हम लोग अपने को संसार का सबसे श्रेष्ठ निवासी गिनते हैं।......राजकुमार इस द्वीप की कितनी प्रशंसा करते थे। वह कहते थे कि इस विश्व में यदि कहीं स्वर्ग है, तो इसी द्वीप में। बाबा के समान किसी दूसरे स्वर्ग का ज़िक्र उन्होंने नहीं किया। और वह बाबा! मेरे गुरुदेव! मेरे अन्तःकरण में एक आग-सी सुलगा कर वे कहां चले गए!

यशोवर्मा! राजकुमार! मेरे दूल्हा! यह कैसा उपहास है। एक विदेशी राजकुमार आशाद्वीप की महारानी का दूल्हा किस तरह बन सकता है? आशाद्वीप के नागरिक कुछ गलत तो नहीं कहते। परन्तु फिर भी उन्हें अपना वचन तो पूरा करना ही चाहिए था। मैंने उनसे कहा था कि मैं उनकी प्रतीक्षा करूँगी। ओह, कब से मैं अभागिन उनकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। रात को नींद में मैं उन्हें देखती हूँ और बहुधा यही चिन्ता मेरी नींद भी उचट देती है कि कहीं बड़े-बड़े पालों और ऊँचे-ऊँचे मस्तूलों वाला कोई जहाज आशादीप के निकट समुद्र में

राह तो नहीं भटक गया। रात के बाद प्रातः होती है। मै इसी मन्दिर पर आकर प्रतीक्षा करने लगती हूँ। प्रतीक्षा करते-करते दिनों के सप्ताह बन गए, सप्ताहों के मास, मासों की ऋतुएँ, ऋतुओं के वर्ष और अब तो वे लम्बे-लम्बे वर्ष भी अनेक बीत गए। आशाद्वीप के नागरिक मुझे अकेली और अनमनी-सी देखकर दुखी हैं। उन्हें अपने किए पर पश्चात्ताप है। परन्तु वे अब कर ही क्या सकते हैं। मेरा दुख अब कौन बांट सकता है।

हाँ, मैने उनसे कहा था कि वह चले जाएँ। मैंने अपने दिल की चाह उन पर प्रकट नहीं होने दी। मैंने उनका आदर किया, सत्कार किया, परन्तु उन पर क्षण भर के लिए भी यह प्रकट नहीं होने दिया कि वह मुझे पाने की चाह कर सकते हैं; या मैं उनकी बन सकती हूँ।

सदा के सामान आज भी मैं यहां बैठी हूँ और इस अपार नील जलराशि की ओर देख रही हूँ। ऊपर-नीचे आस-पास सब नील ही नील है। इस नीलमहासमुद्र में बड़े-बड़े पालों और ऊँचे-ऊँचे मस्तूलों वाला जहाज लेकर तुम फिर कब इधर आओगे राजकुमार?

[रेवा चुपचाप एकटक दृष्टि से समुद्र की ओर देखने लगती है। सहसा एक अव्यक्त-सी, विचित्र-सी आवाज़ रेवा के कानों में पड़ती है। जैसे कोई गाने का प्रयत्न कर रहा हो। रेवा घूम कर पीछे की ओर देखती है और यह देख कर उसके आश्चर्य की सीमा नही रहती कि मन्दिर की मैना

उसके प्रिय गीत को नकल करने का
प्रयत्न कर रही है । रेवा के
मुंह पर हल्की-सी मुसकराहट
छाजाती है और वह वही
गीत गाने लगती है ।]

गीत

शून्य मन्दिर में बनूँगी, आज मैं प्रतिमा तुम्हारी !
अर्चना हो शूल भोले,
क्षार दृग-जल अर्घ्य हो ले,
आज करुणा-स्नात उजला,
दुःख हो मेरा पुजारी !
नूपुरों का मूक छूना,
स-रव कर दे विश्व सूना,
यह अगम आकाश उतरे,
कम्पनों का हो भिखारी !
लोल तारक भी अचंचल,
चल न मेरा एक कुन्तल,
अचल रोमों में समाई
मुग्ध हो गति आज सारी !
राग मद की दूर लाली,
साध भी इसमें न पाली,

गीतकार: महादेवी वर्मा ।

शून्य चितवन में बसेगी,
मूक हो गाथा तुम्हारी !
शून्य मन्दिर में बनूँगी, आज मैं प्रतिमा तुम्हारी !

[सन्दीप का प्रवेश]

रेवा : राजमहलों से हो आए सन्दीप ?

सन्दीप : जी हां, महारानी।

रेवा : यहां अकेले रहने में तुम्हें भय प्रतीत नहीं होता ?

सन्दीप : भय किस से लगे माता !

रेवा : अच्छा, भय न सही। अकेले रहते-रहते तुम्हारा जी नहीं ऊब जाता ?

सन्दीप : जी नहीं ऊबता। यह स्थान इतना सुन्दर है कि मैं यहां बरसों तक बिलकुल अकेला रह सकता हूँ और फिर मै यहां अकेला रहता भी कहां हूँ। प्रातःकाल आप यहां आती हैं। सायंकाल बहुत से नागरिक शिवपूजा के लिए आते है। मैं भी नगर तक जाता ही रहता हूँ। मैं अकेला कहां हूँ !

रेवा : कितना सूनापन है तुम्हारे इस मन्दिर के वातावरण में ?

सन्दीप : एक बात पूछूँ तो तुम बताओगी माँ ?

रेवा : पूछो।

सन्दीप : अभी आप जो यह गीत गा रही थीं, जिसे बीसों बार आप यहां गा चुकी हैं और मन्दिर की सारिका भी

जिसकी पहली पंक्ति की नकल करने लगी है, उस गीत में से क्या गहरी निराशा नहीं टपकती महारानी ?

रेवा : टपकती है।

सन्दीप : तो इस निराशा को दूर करने का क्या कोई उपाय नहीं है मां ?

रेवा : शायद नहीं है।

सन्दीप : मैं सब समझता हूँ मां ! इस द्वीप के नागरिकों ने भारी भूल की थी। उनसे वह महाभयंकर अपराध बन पड़ा था। परन्तु मां, क्या तुम अपने पुत्रों के उस अपराध को क्षमा न कर उन्हें इतना कड़ा दण्ड दिए ही जाओगी कि अपने हृदय के भीतर का वह भारी दुख, अपने ही भीतर भरे रहो और द्वीपभर के एक भी व्यक्ति पर उसे प्रकट तक न करो ? यह तो तुम्हारी बहुत बड़ी ज़्यादती है मां !

[स्वर कांपने लगता है ।]

रेवा : (फीका-सा मुसकराकर) मैं आशाद्वीप की महारानी हूँ। मैं तुम सब की मां हूँ। मां होकर अपने हृदय की कातरता मैं अपने पुत्रों पर किस तरह व्यक्त कर सकती हूँ !

सन्दीप : मुझे आज्ञा दो महारानी कि मैं एक जहाज लेकर काम्बोज जाऊँ और जिस तरह भी बन पड़े, युवराज को अपने साथ यहां ले आऊँ।

रेवा : नहीं सन्दीप, ऐसी मूर्खता कदापि न करना। अपनी मां का यह अपमान कदापि न करना। उन्होंने मुझ से कहा

था कि एक दिन वह पुनः इस द्वीप में आएँगे और मुझे विश्वास है कि अवश्य ही वह अपना वचन पूरा करेंगे।

सन्दीप : तो फिर वह अब तक आए क्यों नहीं ?

रेवा : प्रतीक्षा की भी कभी कोई अवधि होती है सन्दीप ! मैंने कहा था कि मैं प्रतीक्षा करूँगी। मै आजीवन प्रतीक्षा करूँगी। और फिर उन्होंने यह तो नहीं कहा था कि वह भी मेरी प्रतीक्षा करेंगे। वह किसी भी तरह मेरे साथ वचनबद्ध नही है।

सन्दीप : वचनबद्ध कैसे नही हैं। आप ही ने कहा है कि वह पुनः यहां आने का वचन दे गए हैं।

रेवा : वह आने का वचन तो दे गए हैं, परन्तु यह वचन नहीं दे गए कि वह युवराज से सम्राट नहीं बनेंगे। अथवा जैसे वह अब तक थे, सदा वैसे ही बने रहेंगे।

सन्दीप : अपने पुत्रो को तुम अत्यन्त कठोर दण्ड दे रही हो मां !

[राजकुमारी रेवा के चेहरे पर मुस्कराहट छा जाती है और सन्दीप की आँखों में आँसू भर आते हैं।]

दृश्य २

देश—*काम्बोज*
स्थान—*यशोधरपुर के राजमहल*
समय—*मध्याह्नपूर्व*

[सम्राट यशोवर्मा अपने मन्त्रणागृह के बाहर एक ज़रा-सी परिधि में धीरे-धीरे टहल रहे हैं।]

यशोवर्मा : (आप ही आप) इस विश्व में जैसे सभी जगह अहंकार, दम्भ, छल और अपहरण का आधिपत्य है। सभी देश, सभी राष्ट्र, सभी जातियां एक दूसरे को हड़प कर जाने का प्रयत्न कर रही हैं। सभी अपने को श्रेष्ठ मानते हैं और दूसरों को दलन करने के योग्य। परन्तु इस विश्व में भी एक छोटा-सा कोना है, जहां दम्भ, छल और हत्या का राज्य नहीं है। जहां प्रतिद्वन्द्विता नहीं है, जहां ईर्ष्या नहीं है, जहां बदले की भावना भी नहीं है। वह अत्यन्त छोटा-सा आशाद्वीप! वह स्वर्ग का एक कोना और वहां की महारानी रेवा! कितना प्यारा नाम है रेवा! मुग्धा, चकिता, हरिणी की-सी वे आंखें। वह गम्भीर विचार-शक्ति और वह देव-दुर्लभ रूप। मैं इस सब के अयोग्य था। स्वर्ग राज्य की उस सम्राज्ञी ने मेरा जो आदर-सत्कार किया, उससे शुरू-शुरू में मैं समझा था कि जैसे वह मुझे चाहती है। परन्तु मैं गलती पर था। उसका विशाल हृदय इतना बड़ा है कि मेरे जैसे अभागे व्यक्ति

के हृदय को अपने स्नेह से लबालब भर कर भी वह स्वयं भरा का भरा ही रहता है। "पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते !"[1] बहुत शीघ्र मुझे मालूम हो गया है कि मै भ्रम में था। आशाद्वीप का एक-एक निवासी यही समझता है कि महारानी उस की अपनी मां है। ऐसे व्यक्ति के हृदय पर मैं एकाधिकार जमाना चाहता था ? भला यह भी कभी सम्भव था ! परन्तु

उसने कहा था, तुम एक बार पुनः इस द्वीप में आना ! उसने यह भी कहा था कि मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में रहूँगी। क्या सचमुच वह मेरी प्रतीक्षा में होगी ! नहीं, यह असम्भव है। आशाद्वीप का एक-एक नागरिक उसे मेरी अपेक्षा कहीं अधिक प्रिय है। फिर भी जो चाहता है कि मैं वहाँ पहुँचूँ। मैं सभी काम छोड़कर आशाद्वीप की ओर उड़ जाना चाहता हूँ। परन्तु साम्राज्य के ये बन्धन मुझे यहां कैद किए हुए हैं। मुझे ज़रा भी स्वतन्त्रता नहीं है। क्षण-भर के लिए भी स्वतन्त्रता नहीं है। मैं इस सुखी साम्राज्य का दुखी सम्राट हूँ ! मेरी इतनी-सी इच्छा भी पूरी नहीं हो सकती !

[ऋषि पुण्डरीक का प्रवेश]

पुण्डरीक : मुझे आने में कुछ विलम्ब हो गया यशोवर्मा ! क्षमा

---

१. पूरे में से पूरा लेकर भी वह पूरा ही बच रहता है !

करना। कुमार गोबिन्द मुझे अंगकोर वाट में सद्यः-निर्मित शिवमन्दिर दिखाने ले गए थे। वहां मुझे आशा से अधिक समय लग गया। इधर तुम मेरी प्रतीक्षा में रहे होगे।

यशोवर्मा : मुझे कोई भी असुविधा नहीं हुई गुरुदेव! हां, गोबिन्द द्वारा निर्मित वह नया विशाल शिव-मन्दिर कैसा है?

पुण्डरीक : निर्माण-विद्या के इस चमत्कार को देखकर मै तो आश्चर्य-चकित रह गया। गोबिन्द का कहना है कि उसके अपने देश में भी इस मन्दिर के समान भव्य निर्माण शायद ही कोई हो। इस देश में आकर उसने एक नया मसाला तैयार किया है जो अब तक के बने सभी मसालों से कम से कम चार गुना अधिक मजबूत है। तभी तो गोबिन्द अपने इस भव्य मन्दिर में इतने बड़े-बड़े मेहराबदार गुम्बद बना पाया है।

यशोवर्मा : मैं कृतार्थ हुआ आचार्य!

पुण्डरीक : यशोवर्मा, मुझे तो यहां तक विश्वास है कि हज़ार वर्षों के बाद यदि कभी काम्बोज की कीर्त्ति-गाथा पृथ्वीतल के निवासी भूल भी जाएँ, और विश्व पर से काम्बोज का नाम भी लुप्त हो जाए, तो भी शिल्पी गोबिन्द द्वारा अंगकोर वाट में निर्मित यह शिवमन्दिर संसार को तुम्हारे, तुम्हारे वंश और तुम्हारे द्वीप की कीर्त्तिगाथा का परिचय देता रहेगा।

[सम्राट् सिर झुका कर यह आशीर्वाद ग्रहण करते हैं ।]

यशोवर्मा : आचार्य, यदि आप अनुमति दें तो मैं कुछ दिनों के लिए समुद्रयात्रा पर जाना चाहता हूँ ।

पुण्डरीक : किस ओर ?

यशोवर्मा : यह अभी कुछ भी नही मालूम ।

पुण्डरीक : आशाद्वीप की ओर जाओगे न ?

यशोवर्मा : शायद वहां भी जाऊँ ।

पुण्डरीक : वहां जाने से लाभ ?

यशोवर्मा : यह लाभ का प्रश्न नहीं है गुरुदेव, यह मेरी समुद्र-यात्रा की इच्छा का प्रश्न है ।

पुण्डरीक : मैं सभी कुछ सुन चुका हूं पुत्र ! मुझ से कुछ भी छिपाने की आवश्यकता नहीं है ।

यशोवर्मा : किससे सुना ?

पुण्डरीक : कुमारी द्वीप में मकरन्द से ।

यशोवर्मा : तो अब मुझे आप क्या राय देते है गुरुदेव ?

पुण्डरीक : मेरी राय तो यही है कि तुम्हें तब साहस से काम लेना चाहिए था । यदि तुम राजकुमारी रेवा से अनुरोध करते कि वह तुम्हारे साथ कुछ समय के लिए काम्बोज चली आएँ, तो यह समस्या शायद स्वयं ही हल हो जाती ।

यशोवर्मा—यह किस तरह सम्भव था आचार्य ? आशाद्वीप के निवासियों को अपने देश का बहुत अधिक अभिमान है । शेष सम्पूर्ण संसार को वे हेय समझते है । और अपने प्रजा-जन की राय के बिना महारानी को विदेश-यात्रा के

लिए किस प्रकार तैयार किया जा सकता था ?

पुण्डरीक : मैं वह सब भी सुन चुका हूँ। परन्तु तुम्हीं बतलाओ कि तुमने कभी वहाँ के नागरिकों के हृदय में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करने का कोई प्रयत्न भी किया ?

यशोवर्मा : नहीं गुरुदेव !

पुण्डरीक : क्या तुम सचमुच वैसा कर ही नहीं सकते थे ? तुम, जो शस्त्र के बल पर समुद्र बीच के इन सभी द्वीपों का विजय कर सकते हो; तुम, जो अपनी वीरता के बल पर चम्पा के शक्तिशाली साम्राज्य को अपने अधीन कर सकते हो, वही तुम एक बहुत ही छोटे-से द्वीप के दस-बीस हज़ार नागरिकों के हृदय में अपने लिए सम-बन्धुत्व के भाव उत्पन्न नहीं कर सकते थे, यह बात क्या मानने योग्य है ? सच बात तो यह है कि तुमने इसके लिए प्रयत्न ही नहीं किया। शायद उस चकाचौंध में तुम्हें यह बात सूझी ही नहीं।

यशोवर्मा : आप ठीक कहते हैं गुरुदेव ! परन्तु अब इसका उपाय ही क्या है ?

पुण्डरीक : मेरी राय है कि अब तुम आशाद्वीप और राजकुमारी रेवा की याद ही भुला दो।

यशोवर्मा : यह असम्भव है आचार्य !

पुण्डरीक : क्या तुम अपने हृदय को यह बात नहीं समझा सकते कि रेवा स्वर्ग की देवी है, और तुम उसके योग्य

नहीं हो ? ऐसा प्रयत्न तो कर देखो; तब आशाद्वीप के प्रति तुम्हारे हृदय की ममता का रूप ही बदल जाएगा। अन्तःकरण को हर समय आग की तीक्ष्ण ज्वाला के समान झुलसाने वाली यह याद तब एक मधुर याद के रूप में परिवर्तित हो जाएगी बेटा ! तुम यह कल्पना करो कि तुम जीवित रहते स्वर्ग चले गए थे और वहाँ तुमने एक मानवोत्तर देवी के दर्शन किए, जो किसी भी प्रकार तुम्हारी नहीं बन सकती थी।

[द्वारपाल का प्रवेश।]

द्वारपाल : सम्राट !

यशोवर्मा : क्या है ?

द्वारपाल : महाशिल्पी कुमार गोबिन्द आए हैं।

यशोवर्मा : उन्हें यहाँ भेज दो।

द्वारपाल : जो आज्ञा सम्राट।

[प्रस्थान]

पुण्डरीक : गोबिन्द अपने इस नए मन्दिर के उद्घाटन-समारोह की निथि निश्चित करने की इच्छा से तुम्हारे पास आया होगा।

[गोबिन्द का प्रवेश। सम्राट को अभिवादन और सम्राट का प्रत्याभिवादन।]

यशोवर्मा : हम लोग तो यहां खड़े-खड़े ही बातें कर रहे हैं कुमार ! आपको असुविधा प्रतीत होती हो तो भीतर चले चलें।

गोबिन्द : नहीं सम्राट् । यहां ही ठीक है । मैं आपका अधिक समय नहीं लूँगा ।

यशोवर्मा : कहिए, आपका मन्दिर-निर्माण सम्पूर्ण हो गया ?

गोबिन्द : आपके अनुग्रह से सभी काम निर्विघ्न सम्पन्न हो गया ।

यशोवर्मा : पूरे पन्द्रह वर्षों तक आपने जो अनथक प्रयत्न किया है, वह आज पूर्णतः सफल हो गया । ऋषि पुण्डरीक का कथन है कि यह मन्दिर सम्पूर्ण विश्व में अद्वितीय है ।

गोबिन्द : यह गुरुदेव का आशीर्वाद है ।

यशोवर्मा : हां, तो आप उसके उद्‌घाटन-समारोह की तिथि निश्चित करने ही यहां आए हैं न ?

गोबिन्द : जी हां सम्राट !

पुण्डरीक : इस मन्दिर का उद्‌घाटन भी मन्दिर की महत्ता के अनुकूल ही होना चाहिए सम्राट ! आप संसार भर के सभी देशों में इस अवसर के लिए निमन्त्रण भेजिए । विश्व भर के प्रतिनिधि काम्बोज में आएं और स्वयं अपनी आंखों से देख लें कि काम्बोज-सम्राट केवल एक विजेता ही नहीं, वह संसार के अनन्यतम कलाप्रेमी भी हैं ।

यशोवर्मा : ऐसा ही होगा आचार्य ! महाशिल्पी कुमार गोबिन्द, आगामी वसन्तोत्सव का दिन तुम्हें इस कार्य के लिए पसन्द है ?

गोबिन्द : बहुत ठीक सम्राट। तब तक सभी तरह की तैयारियों के लिए हमें काफ़ी समय भी मिल जायगा।

यशोवर्मा : अच्छा, तो आप राजपुरोहित से इस कार्य के लिए शुभ मुहूर्त का निश्चय भी कर लीजिए ।

गोबिन्द : जो आज्ञा सम्राट !

[प्रणाम कर के प्रस्थान]

पुण्डरीक : एक बहुत आवश्यक बात की सूचना देने के लिए ही मैंने तुम से आज का यह समय नियत किया था।

यशोवर्मा : आज्ञा कीजिए दादा !

पुण्डरीक : अब तुम्हें गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर लेना चाहिए पुत्र !

[यशोवर्मा फीका-सा हँस कर चुपचाप खड़े रहते हैं।]

पुण्डरीक : मैं सभी कुछ समझता हूँ यशोवर्मा ! परन्तु तुम्हें भी अपने कर्तव्य के सम्मुख अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं को महत्ता नहीं देनी चाहिए। तुम्हें भी अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। उसी तरह, जिस तरह स्वर्ग की उस देवी ने कर्तव्य की पुकार के सम्मुख अपनी व्यक्तिगत चाह का बलिदान कर दिया।

यशोवर्मा : मेरा वह कर्तव्य क्या है आचार्य ?

पुण्डरीक : तुम काम्बोज-सम्राट हो और यह सम्पूर्ण साम्राज्य अत्यन्त व्यग्रता-पूर्वक बहुत दिनों के अपनी सम्राज्ञी के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है ।

यशोवर्मा : (अर्ध स्वगत) ओह, अब सचमुच ही मैं एक सम्राट हूँ।

पुण्डरीक : जो कुछ असम्भव है, उसकी इच्छा छोड़ दो बेटा ! मैं तुमसे एक और बात भी पूछना चाहता हूँ।

यशोवर्मा : पूछिए।

पुण्डरीक : इन्दिरा के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या राय है ?

यशोवर्मा : महाराजकुमारी इन्दिरा ! सम्पूर्ण नारी जाति में यदि किसी व्यक्ति के लिए मेरे हृदय में आस्था के भाव हैं, तो वह इन्हीं राजकुमारी इन्दिरा के लिए। ओह, किसी एक व्यक्ति में इतना तेज, इतना साहस, साथ ही साथ इतना सौन्दर्य पुंजीभूत हो सकता है !

पुण्डरीक : तो इन्हीं राजकुमारी इन्दिरा के भाई, संसार के सब से महान चोलवंशीय सम्राट परान्तिक के पास मैंने तुम्हारे विवाह का सन्देश लेकर आज ही एक दूत रवाना कर दिया है।

यशोवर्मा : (अत्यन्त गम्भीर भाव से) यहाँ तक ! इस सम्बन्ध में मेरी व्यक्तिगत चाह इतनी नगण्य है कि उसे जानने की भी चेष्टा नहीं की गई ! ओह !

[पुण्डरीक मुसकरा कर चुप रह जाते हैं।]

दृश्य ३

देश—*भारतवर्ष*

स्थान—*मदुरा में चोल राजभवन*

समय—*मध्याह्नोत्तर*

[बहुत ही ऊँचा लम्बा-चौड़ा और अत्यन्त भव्य एक राजसभा-भवन है। युवराज परान्तिक राजसिंहासन पर अभी-अभी आकर बैठे हैं। सभासद अपने-अपने आसनों पर आसीन हैं।]

परान्तिक : काम्बोज के राजदूत कहाँ हैं मन्त्री ?

मन्त्री : वह अभी आते ही होंगे युवराज ! उन्हें जो समय दिया गया था, उसमें अभी कुछ क्षण बाकी हैं।

परान्तिक : तुम उन्हें सीधा मेरे ही पास क्यों नहीं ले आए ?

मन्त्री : आपकी आज्ञा के अनुसार सभी राजदूतों को पहले राजसभा में ही तो आपके सम्मुख पेश किया जाता है।

परान्तिक : परन्तु तुम जानते नहीं क्या ? यह दूत काम्बोज से आ रहा है और मेरी प्यारी बहन, महाराजकुमारी इन्दिरा आजकल काम्बोज में ही हैं।

मन्त्री : (लज्जित होकर) मुझे इस बात का ध्यान ही नहीं आया युवराज !

परान्तिक : एक लम्बे युग से मुझे अपनी बहन का कोई समाचार नहीं मिला। अब भी वे 'कुछ क्षण' बीत नहीं गए क्या मन्त्री ?

[द्वारपाल का प्रवेश]

परान्तिक : काम्बोज के राजदूत आए हैं न। उन्हें जल्दी भेजो। भागो !

[द्वारपाल भयभीत होकर बड़ी तेज़ी से लौट जाता है। अगले ही क्षण राजदूत का प्रवेश। दूत झुककर प्रणाम करने ही लगता है कि परान्तिक पहले ही कह उठते हैं।]

परान्तिक : चोल साम्राज्य में मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ, काम्बोज के राजदूत ! तुम्हारा प्रणाम स्वीकार है। बोलो, महाराजकुमारी इन्दिरा का क्या हाल है ?

दूत : (अत्यन्त विस्मित होकर) अभी सब समाचार आपकी सेवा में निवेदन करता हूँ सम्राट। परन्तु उससे पहले काम्बोज साम्राज्य के महान अधीश्वर महामहिम, महाराजाधिराज, सम्राट यशोवर्मा के आदरपूर्ण प्रणाम और हार्दिक सद-भिलाषाएं स्वीकार कीजिए।

परान्तिक : देखो राजदूत, पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो। बाकी सब बातें बाद में होंगी। महाराजकुमारी इन्दिरा तो सकुशल हैं न ?

दूत : महाराजकुमारी पूर्णतः सकुशल हैं। उन्होंने आपके लिए यह पत्र मेरे हाथ भेजा है।

[परान्तिक स्वयं राजसिंहासन से उतर कर उस पत्र को ले लेते हैं और वहीं खड़े-खड़े पत्र पढ़ने लगते हैं। पत्र अधिक लम्बा नहीं है। बहुत शीघ्र उसे पढ़कर वह उसे छाती से लगा लेते हैं और इसके

बाद अपनी उद्विग्नता पर जैसे आप
ही आप कुछ लज्जित-से होकर
वह अपने सिंहासन की ओर
वापस लौट जाते हैं ।]

परान्तिक : (सिंहासन पर बैठकर) राजदूत, तुम यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि मैं अपनी इस बहन को कितना अधिक प्यार करता हूँ । आज दो बरस बीत गए और वह वापस नहीं लौटीं । मैंने उनसे कितना अनुरोध किया था कि वह मुझे भी अपने साथ विदेशयात्रा पर ले चलें, परन्तु उन्होंने मेरा अनुरोध स्वीकार नहीं किया । उनके जाने के बाद राजधानी में मेरा जी ज़रा भी नहीं लगा । हर समय जी में कुछ खिज-सी, कुछ उदासी-सी भरी रहती थी । लाचार होकर बहुत शीघ्र मैं दिग्विजय के लिए चल दिया । पिछले दो वर्षों में ही मैंने चोल राज्य को एक विशाल साम्राज्य के रूप में परिवर्तित कर दिया है । यह सब मेरी बहन के आशीर्वाद का ही फल है राजदूत ! वह चलते हुए मुझे आशीर्वाद दे गई थीं—'तुम्हें अक्षय यश मिले मेरे भाई !'

दूत : महाराजकुमारी की इस काम्बोज यात्रा से, काम्बोज साम्राज्य को जो स्थायी लाभ पहुँचा है, उसके लिए सम्राट यशोवर्मा ने मेरे द्वारा हार्दिक कृतज्ञता के भाव प्रेषित किए हैं । महाराजकुमारी के प्रभाव से यशोधरपुर

आज विश्व का एक आदर्श नगर बन गया है। यशोधर-पुर निवासी महाराजकुमारी को अपनी माता के समान मानते हैं और उनके हृदय में उनके लिए अत्यधिक गहरी श्रद्धा है।

परान्तिक : इन्दिरा स्वदेश को कब लौटेंगी राजदूत ?

दूत : मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं सम्राट !

परान्तिक : मैं सम्राट नहीं हूँ, राजदूत ! मैं तो अभी युवराज ही हूँ। मेरे पिता अत्यन्त वृद्ध हैं, इससे राजकार्य संचा-लन मैं ही कर रहा हूँ, परन्तु मैं सम्राट नहीं हूँ।

दूत : यदि मेरे इस सम्बोधन से वयोवृद्ध चोल-सम्राट की कुछ भी अवमानना हुई हो तो उसके लिए मैं हृदय से क्षमा चाहता हूँ।

परान्तिक : नहीं, वैसी कोई बात नहीं है। अच्छा, राजदूत अब तुम अपनी इस यात्रा का प्रयोजन बतला सकते हो।

दूत : मेरे निवेदन में यदि आपको किसी तरह की अभद्रता का आभास मिले तो उसके लिए क्षमा कीजिएगा सम्राट।

परान्तिक : कहो, निर्भय होकर अपनी बात कहो।

दूत : काम्बोज सम्राट की ओर से आगामी वसन्तोत्सव पर मैं आपको काम्बोज में निमन्त्रित करने आया हूँ।

परान्तिक : इस निमन्त्रण पर मैं विचार करूँगा। बस, इतनी ही बात थी।

दूत : एक और भी निवेदन है युवराज !

परान्तिक : वह क्या ?

दूत : आर्य कुल चूड़ामणि, काम्बोज साम्राज्य के राजगुरु महामति ऋषि पुण्डरीक मेरे द्वारा आप से यह अनुरोध करना चाहते हैं कि आप महाराजकुमारी इन्दिरा को सदा के लिए काम्बोज में बस जाने की अनुमति देने की कृपा कीजिए।

परान्तिक : (अत्यन्त गम्भीरता से) तुम्हारा अभिप्राय क्या है, साफ़-साफ़ कहो।

दूत : आचार्य पुण्डरीक की, अपितु सम्पूर्ण काम्बोज साम्राज्य की यह हार्दिक अभिलाषा है कि महाराजकुमारी इन्दिरा उस साम्राज्य की सम्राज्ञी बनें।

परान्तिक : (अर्ध स्वगत) अब मैं समझा ! ओह बहन, तभी तुमने भी अपने पत्र में मुझसे आग्रह किया है कि सम्राट यशोवर्मा के वसन्त-निमन्त्रण को मैं स्वीकार कर लूँ। (दूत से) अच्छा राजदूत, मुझे तुम्हारा यह सन्देश स्वीकार है। आगामी वसन्तोत्सव पर मैं काम्बोज पहुँचने का प्रयत्न भी करूँगा।

[राजदूत घुटने टेककर कृतज्ञता प्रकाशित करता है।]

दृश्य ४

देश—*आशाद्वीप*

स्थान—*जलमग्न आशाद्वीप का आकाश से दिखाई देने वाला दृश्य*

समय—*सांझ का प्रारम्भ*

[समुद्र में भीषणतम तूफ़ान आया हुआ है। पर्वत शिखरों की-सी ऊँची सैकड़ों हज़ारों भीमकाय लहरें आशाद्वीप पर वेग के साथ आक्रमण कर रही हैं। खेत, उपवन, उद्यान सभी जलमग्न हैं। केवल नगर का कुछ भाग और राजप्रासाद ही अभी तक पानी से बचे हुए हैं। द्वीप भर के सम्पूर्ण नागरिक राजप्रासादों के शिखरों पर एकत्र हैं। परन्तु पानी का वेग प्रतिक्षण बढ़ता चला जा रहा है। आकाश भर में लाल-लाल धूली-सी न जाने कहाँ से आकर एकत्र हो गई है। तेज़ हवा चल रही है। सांझ अभी प्रारम्भ ही हुई है, परन्तु सूरज इस लाल-लाल धूल के कारण रक्तिम आभा लिए एक तुच्छ-से दीपक से बढ़कर कुछ भी प्रतीत नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्र की वेगवान लहरें आशाद्वीप के किनारों को भीतर ही भीतर काटती-छीलती चली जा रही हैं और इसी कारण द्वीप पर का सम्पूर्ण समुद्र जल बहुत ही गदला, लाल-लाल-सा हो गया है। आशा द्वीप के सम्पूर्ण नागरिक—स्त्री-पुरुष दोनों—एक साथ एकत्र हैं। बच्चे इतना अधिक डर गए हैं कि उनकी रुलाई भी नहीं फूट पाती। स्त्री-पुरुष सभी भयभीत हैं, परन्तु वे हतप्रज्ञ नहीं हुए। सब लोग हाथ जोड़कर चुपचाप परमेश्वर से प्रार्थना कर रहे हैं। राजकुमारी रेवा भी इसी जन-समूह में मूक-निस्पन्द-सी बैठी है।

सहसा पृथ्वी ज़ोर से हिल उठती है। एक असह्य धक्का-सा लगता है। जैसे पैरों के नीचे का आधार खींच लिया जा रहा हो। राजप्रासाद पत्तों के घरौंदों की तरह उग्रता के साथ हिल उठते हैं और क्षणभर बाद स्थिर हो जाते हैं। उनका कोई-कोई भाग भूमि में धँसकर नीचा हो जाता है। नगर के अनेक मकान गिर पड़ते हैं। सहसा कोलाहल मच उठता है।]

नागरिक : (एक साथ) भूकम्प ! भूकम्प !!

[डरे हुए बच्चों की चीखें जैसे बाधा तोड़कर निकल पड़ती हैं और सब ओर घोर हाहाकार मच जाता है। जलमग्न वृक्षों के शिखरों पर से हज़ारों-लाखों पक्षी आकाश के प्रबल तूफ़ान की अवज्ञा कर अपने पंख खोलकर उड़ जाते हैं। तीव्र वायु के झोंके इन पक्षियों को कभी इधर कभी उधर धकेलने लगते हैं। सम्पूर्ण वायुमण्डल इन पक्षियों के भीत रुदन से गूंज-सा उठता है। भूकम्प तो कुछ क्षणों तक जारी रहकर थम जाता है, परन्तु उसकी प्रतिक्रिया पूरी उग्रता के साथ बहुत समय तक जारी रहती है। सहसा राजकुमारी रेवा अपने ऊँचे स्थान पर खड़ी हो जाती है, और नागरिकों को सम्बोधित करने लगती है। राजकुमारी को देखकर रोते हुए बच्चे भी चुप हो जाते हैं और सम्पूर्ण नागरिकों में सन्नाटा छा जाता है।]

रेवा : (ऊँचे स्वर में) पुत्रो, अब हम लोगों के लिए कोई आशा नहीं है। भगवान की यही इच्छा है। प्रतीत होता है,

आज ही प्रलय का दिन है। परन्तु हम लोग इस सबसे, प्रकृति के इस मृत्यु-निमन्त्रण से, क्या भयभीत हो जाएँगे ? मुझे विश्वास है कि आशा द्वीप के वीर नागरिक इस अनिवार्य मृत्यु का सामना भी हँसते-हँसते करेंगे।

[सब लोग चुप रहते हैं। रेवा और भी आवेश के साथ कहने लगती है।]

नागरिको, आज प्रलय का दिन है! हमारे पश्चिमोत्तर प्रदेश के समुद्रगर्भ में जो ज्वालामुखी पर्वत है, प्रतीत होता है कि वह आज फट रहा है। प्रलयंकर महादेव का ताण्डव नृत्य शुरू हो गया है! आशाद्वीप के वीर नागरिको, आओ, हम लोग भी हँसी-खुशी उस नृत्य में सहयोग दें!

[नागरिकों का भय कम होता हुआ प्रतीत होता है। राजकुमारी के गम्भीर चेहरे पर जैसे मुसकराहट छा जाती है। वह अपना कथन जारी रखती है।]

रेवा : अपने जीवन की सभी आशाएं, सभी आकांक्षाएं, सभी स्मृतियां और सभी सुख-दुख साथ लेकर हम सब लोग एक ही साथ आज महाप्रयाण कर जाएंगे। हम में से एक भी व्यक्ति यहां बाकी नहीं रहेगा। हमारी सम्पत्ति, हमारा धन-धान्य, हमारा नगर, हमारा देश—कुछ भी बाकी नही रहेगा। सभी कुछ हमारे साथ ही साथ नष्ट हो जाएगा। यह सह-नाश क्या दुखित होने की चीज है! नागरिको, आओ, आज हम लोग हँसते-हँसते इस महामृत्यु का आलिंगन करें!

१ नागरिक : सन्दीप कहां है ?

सभी लोग : सन्दीप ! सन्दीप !

रेवा : सन्दीप शिवमन्दिर में है। शिवजी को उसकी आवश्यकता है। उसे वहीं रहने दो।

२ नागरिक : हम लोग भी क्या शिवमन्दिर तक नहीं पहुँच सकते ?

रेवा : प्रकृति का यह भीषण रूप नहीं देखते नागरिको ! पर्वत के समान भीषण इन लहरों को पार कर कौन व्यक्ति शिवमन्दिर तक पहुँच सकता है ? और कौन जानता है कि इस प्रलय के बाद भी शिवमन्दिर बाकी बच रहेगा !

[भूकम्प का एक और धक्का आता है। पहले धक्के से भी अधिक भीषण। इसके साथ ही साथ एक अश्रुतपूर्व, महाभीषण आवाज भी सुनाई देती है। पश्मिोत्तर दिशा में, बहुत दूर पर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे समुद्रतल फट गया है और उसमें से आकाश-चुम्बी अग्निज्वालाएँ उठ रही हैं। भूकम्प के इस धक्के से नगर का रहा-सहा भाग गिरकर जलमग्न हो जाता है। पश्चिमोत्तर दिशा से समुद्र जल की सैंकड़ों फीट ऊँची एक दुर्ग प्राचीर-सी लहर महलों की ओर बढ़ी आती हुई दिखलाई देती है। सभी लोग आंख मूँद लेते हैं। सभी को विश्वास हो जाता है कि यह लहर उन्हें अपने साथ बहा ले जाएगी, परन्तु नगर के खण्डरातों से ठोकर खाकर इस लहर का आकार और वेग बहुत कम रह जाता है। कुछ समय के बाद नागरिक अपनी आंखें खोलकर भगवान का नाम लेते हैं। कुछ ही क्षणों के

बाद दूसरी ओर से उसी तरह की एक और भीषण लहर आती हुई दिखलाई देती है, परन्तु इस लहर का प्रवाह भी शिवमन्दिर के आधार की पहाड़ी चट्टानों से टक्कर खाकर बहुत कम रह जाता है।]

दृश्यान्तर

स्थान—*शिवमन्दिर का खुला आंगन*
समय—*सांझ*

[सम्पूर्ण आशाद्वीप जलमग्न दिखलाई दे रहा है। इस अगाध जलराशि के बीचोंबीच राजप्रासादों के शिखरों पर बहुत छोटे-छोटे आकार के मनुष्य दिखाई दे रहे हैं। भूकम्प के दो भीषण धक्के खाकर भी, मन्दिर से संयुक्त लोहे की एक भारी सांकल को जोर से पकड़कर सन्दीप बैठा है। बिल्कुल अकेला। वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा है—"रेवा! रेवा!! राजकुमारी रेवा!!!" न जाने वह कब से चिल्ला रहा है। चिल्लाते-चिल्लाते उसका गला बैठ गया है। होंठ सूख गए हैं। देह थरथर कांपने लगी है। परन्तु फिर भी उसकी पुकार जारी है। वायुमंडल के भीषण तूफ़ान के कारण उसकी आवाज़, वायुप्रवाह के प्रतिकूल, कुछ गज़ों तक भी जा पाती होगी, इसमें सन्देह है। परन्तु फिर भी फलाफल की कुछ भी परवाह किए बिना, वह लगातार पुकारे जा रहा है।]

सन्दीप : (पूरी सामर्थ्य से) राजकुमारी! मां! इधर आओ। यहां अभी तक पानी नहीं पहुँचा! रेवा! रेवा!! राजकुमारी रेवा!!!

[भूकम्प का एक भीषणतम धक्का और लगता है। सन्दीप इस धक्के को सहार नहीं सकता। वह पथरीली भूमि पर गिर

पड़ता है, उसका मुँह छिल जाता है, नाक से खून बहने लगता है। उसी क्षण एक अश्रुतपूर्व अकल्पनीय और अत्यन्त भीषण आवाज़ उसके कानों में पड़ती है, जैसे अचानक कहीं पृथ्वी फूट पड़ी हो। सन्दीप वह लोह-शलाका पकड़े न जाने कब तक मूर्च्छित-सा पड़ा रहता है। भूकम्प के इस धक्के से शिवमन्दिर का आधा पर्वत, मन्दिर के कुछ भाग सहित कट कर समुद्र में जा गिरता है, परन्तु जिस जगह सन्दीप मूर्च्छित पड़ा है, वह जगह सुरक्षित रहती है। सन्दीप को जान नहीं पड़ता कि वह कितनी देर मूर्च्छित पड़ा रहा। जब उसकी मूर्छा टूटती है, तो वह उठ कर बैठ जाता है। वह व्याकुल दृष्टि से आशाद्वीप की ओर देखता है। उसे कहीं कुछ भी दिखाई नही देता। वृक्ष, नगर, प्रासाद, उपवन कुछ भी नहीं! सभी ओर अपार जल ही जल है। जहाँ तक नज़र जाती है, जल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है! समुद्र के तूफ़ान का प्रकोप अब बहुत कम हो गया है। शिवमन्दिर का एक भाग पहाड़ी के साथ कट कर समुद्र में जा गिरा है। उस भग्न शिव-मन्दिर की इस आधी कटी हुई पहाड़ी पर अत्यन्त भयभीत-सा होकर बैठा हुआ सन्दीप देखता है कि समुद्र में बहुत सा कूड़ा-करकट तरता हुआ दिखाई दे रहा है]

मकरंद : (आंखें खोलकर) मैं क्या स्वप्न देख रहा हूँ भगवान! आशाद्वीप की उस स्वर्ग सृष्टि का यह कूड़ा-करकट ही अवशेष है क्या ? हे प्रभो !

[सन्दीप के चेहरे से अब भी खून की बूंदें टपक रही हैं। अपनी भयभीत आंखें समुद्र की ओर जमाए वह प्रस्तर मूर्ति-सा अचल, निस्संज्ञ बैठा रहता है।]

दृश्य ५

देश—*जहां किसी समय आशाद्वीप था*
स्थान—*शिवमन्दिर की पहाड़ी के निकट का समुद्र*
समय—*प्रभात*

[शान्त समुद्र के वक्षस्थल पर एक बहुत बड़ा जहाज खड़ा है। इस जहाज पर लाल रंग की एक विशाल पताका फहरा रही है। जहाज़ के ऊपरी भाग पर सम्राट यशोवर्मा, सम्राज्ञी इन्दिरा, राजगुरु पुण्डरीक और प्रधानमन्त्री जनार्दन खड़े हैं। कुछ दूरी पर शिवमन्दिर की पहाड़ी दिखाई दे रही है। इस पहाड़ी का एक भाग कटा हुआ है। शिवमन्दिर का भी एक भाग नष्ट हो चुका है। पहाड़ी की चोटी पर, ठीक एक गहरे खड्ड के ऊपर खड़ा हुआ यह भग्न शिवमन्दिर बहुत भयावना-सा प्रतीत होता है। शिवमन्दिर के पश्चिमोत्तर में एक छोटा-सा टीला, मानो समुद्र में से ज़रा-सा मुँह निकाल कर ऊपर की ओर झांक रहा है, इस टीले पर पत्थरों के खण्डरात बिखरे पड़े हैं। परन्तु जहाज़ पर से उन्हें देखा नहीं जा सकता। सम्राट यशोवर्मा बहुत ही विस्मयाकुल होकर शिवमन्दिर की ओर देख रहे हैं। प्रातःकालीन सूर्य की प्रथम आभा ने इस सम्पूर्ण दृश्य को एक विशेष तरह की गम्भीरता प्रदान कर दी है।]

इन्दिरा : नाथ, आशाद्वीप और कितनी दूर है ?

यशोवर्मा : कुछ समझ नहीं आता आर्ये। यह कोई ऐन्द्रजालिक खेल है या सत्य !

पुण्डरीक : पर्वत शिखर पर वह टूटा हुआ मन्दिर कैसा है ?

यशोवर्मा : थोड़ी देर और ठहरिए आचार्य। मुझे विश्वास है कि आशाद्वीप यहीं-कहीं आस-पास ही है।

जनार्दन : नहीं सम्राट, हम लोग अवश्य ही राह भटक गए हैं।

इन्दिरा : इस भग्न मन्दिर को देखकर मुझे भय प्रतीत होता है। ऊपर से कोई गिर पड़े तो उसकी हड्डी-पसली का भी पता न चले।

यशोवर्मा : थोड़ी देर ठहरो सम्राज्ञी। मुझे समझ नहीं आता कि भूतों के नगर की तरह वह सम्पूर्ण आशाद्वीप, वह स्वर्ग का कोना, आख़िर कहां विलीन हो गया !

[सम्राट् अत्यन्त चिन्ताकुल होकर उस पहाड़ी की ओर देखते लगते हैं। सब लोग अपने-अपने स्थान पर चुपचाप खड़े रहते हैं।]

सम्राट : वह देखो, पहाड़ी के निकट जहाज को किनारे लगाने का एक स्थान है। जहाज को उसी ओर ले चलो।

[जहाज को धीरे-धीरे पहाड़ी की ओर ले जाया जाता है। सभी लोग चुपचाप अपनी-अपनी जगह खड़े रहते हैं। जहाज के किनारे से लगते ही सभी लोग स्थल पर उतर आते हैं। सामने पहाड़ी पर चढ़ने की सीढ़ियां दिखाई देती हैं। ये सीढ़ियां भी टूटी-फूटी दशा में हैं। बहुत संभल-संभल कर सभी लोग इन सीढ़ियों पर से होकर शिवमन्दिर के आंगन तक जा पहुँचते हैं। वहाँ पहुंच कर सम्राट दाहिनी ओर के समुद्र पर दृष्टि डालते हैं और तभी उनके मुँह से जैसे एक चीख बलात् निकल जाती है। आशाद्वीप के राजमहलों के अवशेषों से ढका हुआ वह छोटा-सा टीला यहां से साफ़-साफ़ दिखलाई दे रहा है।]

इन्दिरा : यह क्या सम्राट ?

[यशोवर्मा मुँह से कोई जवाब नहीं देते; केवल उँगली उठाकर उन खंडरातों की ओर संकेत करते हैं। उनके मुँह पर गहरी उदासी व्याप्त हो जाती है।]

इन्दिरा : (घबराहट के साथ) वह क्या है नाथ ?

यशोवर्मा : स्वर्ग के खंडहर !

पुण्डरीक : (सहसा चौंककर मन्त्री से) यही आशाद्वीप है क्या ?

[जनार्दन का गला भर आया है, वह जवाब नहीं दे पाते। केवल सिर हिलाकर इंगित करते हैं—"हाँ !"]

इन्दिरा : तुम्हारे जागृत-स्वप्न का वह तीर्थ, स्वर्ग का वह कोना कहां गया नाथ ?

यशोवर्मा : समुद्र के अतल गर्भ में !

[हवा का एक झोंका आता है और उसके साथ कुछ तीव्र-सी पुरानी दुर्गन्ध इन लोगों तक पहुँचती है।]

पुण्डरीक : यह दुर्गन्ध कैसी है बेटा ? जैसे कोई शव सड़ रहा हो।

[यशोवर्मा आगे बढ़कर मन्दिर के द्वार पर पहुँचते हैं। मन्दिर का तीन-चौथाई भाग बाकी है, परन्तु एक चौथाई भाग कटकर समुद्र में गिर गया है। शिवमूर्ति भी समुद्रमग्न हो चुकी है। द्वार के निकट ही एक सड़ी-गली-सी लाश देख पड़ती है।]

पुण्डरीक : यह किसका शव है ?

[यशोवर्मा इतने भावावेश में हैं कि वह जवाब नहीं दे सकते।]

जनार्दन : (ज़रा ध्यान से देखकर) यह सन्दीप होगा सम्राट ! प्रतीत होता है अन्नजल के अभाव में उस तपस्वी की यह दशा हुई है ।

[इसी समय मन्दिर के टूटे हुए पिछवाड़े से अव्यक्त-सी आवाज़ आती है ।]

अव्यक्त अमूर्त्त ध्वनि : "रेवा ! रेवा !! राजकुमारी रेवा !!!"

[सब लोग चकित होकर उस अकल्पनीय, अचिन्त्य, अतर्क्य ध्वनि को सुनते हैं । जैसे मन्दिर की टूटी छत पुकार रही हो—]

—"रेवा ! रेवा !! राजकुमारी रेवा !!!"

[इसके बाद सहसा जैसे खरखरी-सी, अस्पष्ट परन्तु अत्यन्त करुण स्वर में कोई गाने लगता है—]

गीत

शून्य मन्दिर में बनूँगी, आज मैं प्रतिमा तुम्हारी !
शून्य मन्दिर में बनूँगी, आज मैं प्रतिमा तुम्हारी !!
शून्य मन्दिर में बनूँगी, आज मैं प्रतिमा तुम्हारी !!!

[सभी लोग अत्यन्त भयभीत और विस्मयाकुल से रह जाते हैं ।]

इन्दिरा : (कांपती हुई आवाज़ में) यह क्या है नाथ ?

[यशोवर्मा कोई जवाब नहीं दे पाते । इसी समय छत के पिछवाड़े से दोनों पंख फैला कर एक मैना उड़ती है । और उड़ती-उड़ती कहती जाती है—]

"रेवा ! रेवा !! राजकुमारी रेवा !!!"

[सम्राट की आँखों में जो आँसू बहुत देर से उमड़ रहे थे, वे अब बरसने लगते हैं ।]